अंक : १३७

जनवरी - मार्च २०१७

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

नीरजा हेमेंद्र • डॉ. रमाकांत शर्मा • माधव नागदा

अरुणा जेठवाणी • डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

आमने-सामने

माधव नागदा

२० रुपये

Marching Towards..
Digital India..!

Yes! ..आता मी
कोणत्याही बँकेतील
खात्यामध्ये
पैसे पाठवू किंवा मिळवू शकतो!

बँक ऑफ महाराष्ट्र सादर करीत आहे

UPI

महा-यूपीआय ॲप

फक्त 4 सोप्या स्टेप्स्

- गुगल प्ले वरून डाऊनलोड करा महा-यूपीआय ॲप
- स्वतःचा पेमेंट आयडी तयार करा
- त्याला तुमचे खाते जोडा
- कोणत्याही बँकेतील खात्यामध्ये पैसे पाठवा अथवा मिळवा

बैंक ऑफ महाराष्ट्र
Bank of Maharashtra
भारत सरकार का उद्यम

एक परिवार एक बैंक

टोल फ्री क्रमांक.: 1800-233-4526
वेबसाइट: www.bankofmaharashtra.in
नेट बैंकिंग: https://www.mahaconnect.in

फोन किंवा ई-मेलच्या माध्यमाद्वारे आपल्या इंटरनेट बँकिंगची माहिती,
जसे की युजर आयडी/पासवर्ड किंवा आपल्या क्रेडिट/डेबिट कार्डचा नंबर/सीव्हीव्ही/ओटीपी कोणालाही सांगू नये.

जनवरी-मार्च २०१७
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। एक ऋतु ऐसी भी - नीरजा हेमेंद्र
।।१७।। मां के चले जाने के बाद - डॉ. रमाकांत शर्मा
।।२१।। पानी की प्यास - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी
।।२७।। कोख़ - अरुणा जेठवाणी
।।३१।। सृजन यात्रा - माधव नागदा

लघुकथाएं

।।२०।। इति श्रवण-कथा, आम आदमी / योगेंद्र शर्मा
।।२६।। वाह, क्या कहने ! / माला वर्मा
।।३०।। निष्कलंक / ज्ञानदेव "मुकेश"
।।५४।। परंपरा / आनंद बिल्थरे

गीत / ग़ज़लें

।।११।। आत्मकथ्य (गीत) / आनंद तिवारी पौराणिक
।।३४।। दो ग़ज़लें / स्व. आर. पी. शर्मा "महरिष"
।।३९।। ग़ज़ल / सतपाल "स्नेही"
।।४०।। गीत / अखिलेश "अंजुम"
।।५१।। ग़ज़ल / शरीफ़ कुरेशी

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३५।। "आमने-सामने" / माधव नागदा
।।४१।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।४५।। "वातायन" / डॉ. दिनेश श्रीवास्तव
।।४७।। "श्रद्धा-सुमन" (स्व. डॉ. सतीश दुबे) / रमेश मनोहरा
।।४९।। "संस्मरण" / डॉ. रूपसिंह चंदेल
।।५३।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : सांची-स्तूप, बौद्ध विहार (म.प्र.), दिसंबर-९६
चित्र : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ "कथाबिंब" ने प्रकाशन के ३९वें वर्ष में प्रवेश किया है. कथा-प्रधान पत्रिका होने के नाते स्वभाविक है कि हमारा ज़ोर कहानियों पर अधिक रहे. बहुत-सी प्रकाशन सामग्री हमें रचनाकार ई-मेल से भेजते हैं. यह कई बार पहले भी रेखांकित किया जा चुका है कि लघुकथाएं, कविताएं, ग़ज़लें या इस तरह की छुटपुट रचनाएं कृपया मेल से न भेजें. इनका उत्तर देना या इन पर कोई निर्णय लेना क़तई संभव नहीं है. कुछ लेखक "कथाबिंब" के साथ वही रचना अनेक पत्रिकाओं को मेल करते हैं. इन पर भी ध्यान देना संभव नहीं है. यदि आप लघुकथाएं, कविताएं, ग़ज़लें आदि प्रकाशन हेतु भेजना चाहते हैं तो स्वागत है. कृपया साधारण डाक से रचनाएं भेजें और चयन की सुविधा के लिए एक लिफ़ाफ़े में कम से कम ३-४ रचनाएं प्रेषित करें. साथ में जबाव के लिए एक पोस्टकार्ड तो अवश्य ही रखें. होली, दीवाली या नये साल के अवसर पर छपने के लिए त्रैमासिक "कथाबिंब" में कोई गुंज़ाइश नहीं है. वर्तमान में ई-मेल से कहानियां भेजना आसान हो गया है. कहानियां भेजते समय डॉक फ़ाइल के साथ पीडीएफ़ फ़ाइल भी भेजें. कहानी यूनीकोड में रहे तो श्रेष्ठ होगा. पाठकों और सदस्यों से एक निवेदन – बहुत सारे लोगों को पत्रिका अनेक सालों से भेजी जा रही है. हर अंक की कुछ प्रतियां इस कारण लौट आती हैं कि व्यक्ति ने मकान बदल लिया है. कृपया पता बदलने की सूचना हमें दें. यदि किसी कारणवश आप चाहते हैं कि पत्रिका आपको न भेजी जाय तो भी हमें सूचित करें.

हाल ही में भोपाल जाने का अवसर प्राप्त हुआ. अंक के मुखपृष्ठ पर भोपाल के पास सांची स्थित बौद्ध स्तूप का चित्र प्रस्तुत है.

इस बार *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१६"* के पुरस्कारों की घोषणा पृष्ठ ५६ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति-पत्र के साथ पुरस्कार की राशि चैक द्वारा शीघ्र भेजी जायेगी.

हमारा प्रयास रहता है कि तिमाही ख़तम होते-होते नया अंक वेबसाइट पर चला जाये. पाठक वेबसाइट देखकर सुनिश्चित कर सकते हैं कि अमुक अंक प्रकाशित हुआ है अथवा नहीं. वेबसाइट के अलावा *"कथाबिंब"* को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है.

●

आइए, अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर देखें .... *"एक ऋतु ऐसी भी !"* नीरजा हेमेंद्र की "कथाबिंब" में यह दूसरी कहानी है. जीवन में मौसम की तरह ही परिवर्तन आते रहते हैं. कभी पतझड़ और कभी वसंत. नायिका एक शिक्षिका है, उसके जीवन में वसंत आया था पर सब कुछ आभासी था. पति को छोड़कर वह निपट अकेली रह गयी. वह चाहती है कि शिष्या ईशिता के साथ उसके जैसा न हो. अगली कहानी *"मां के चले जाने के बाद"* (डॉ. रमाकांत शर्मा) एक अलग धरातल की कहानी है. वृद्धावस्था में बहुधा बच्चे मां-बाप को अकेला छोड़ देते हैं, कभी-कभी तो उनकी कोई खोज-ख़बर भी नहीं लेते. लेकिन यहां मां के न रहने पर पुत्र पिता को साथ रखता है और उनका पूरा ख़्याल रखता है. किंतु कभी मां का ज़िक्र यह समझकर नहीं करता कि पिता दुखी होंगे. किंतु पिता को लगता है कि शायद वह मां को भूल गया है. डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी *"पानी की प्यास"* मुंबई से ६०-७० मील दूर के एक ऐसे बंजर क्षेत्र की कहानी है जहां हमेशा पानी की किल्लत रहती है. दूर स्थित कुएं से घर की औरतें पानी भर कर लाती हैं. कोई भी पुरुष पानी की प्यास के लिए कई जलपत्नियां ब्याह सकता है. इसे कोई ग़लत नहीं मानता! अरुणा जेठवाणी की मूल सिंधी कहानी का देवी नागरानी ने अनुवाद प्रस्तुत किया है : "कोख़." सोनिया को मां से नफ़रत है, वह उससे मिलना नहीं चाहती. मां ने पिता को छोड़ दिया है और "काका" के साथ रहती है. ऐसा क्यों है. लेकिन अब सोनिया स्वयं गर्भवती है, ऐसे में संबंधों को लेकर उसका सारा नज़रिया बदल जाता है."सृजन यात्रा" (माधव नागदा) अंक की अंतिम कहानी है. लेखक नयी कहानी लिखने का मूड बना रहा है. वह अपने आसपास के लोगों के बारे में लिखना चाहता है. लेकिन कहानी आगे नहीं बढ़ पाती. बीच-बीच में पत्नी कभी चाय, कभी नाश्ता लेकर आती है. कमरा बुहारते-बुहारते कहती है कि मैं आपके आसपास की दुनिया को सुंदर और रहने लायक़ बना रही हूं. लेखक को अहसास होता है कि वह भी तो यही काम करने की कोशिश करता है. उसमें नयी ऊर्जा का संचार होता है, वह तय करता है कि उसे अपनी सृजन-यात्रा ज़ारी रखनी चाहिए.

●

वैसे देखा जाय तो तीन माह का समय अधिक नहीं होता. किंतु पिछली तिमाही में बिना किसी रक्तपात के देश में जो क्रांति हुई है उसे तत्काल समझ पाना मुश्किल है. हाल में हुए चुनावों के परिणाम अत्याधिक चौंकाने वाले हैं. भाजपा के दिग्गजों को भी अनुमान नहीं था कि पार्टी को इतनी बड़ी सफलता मिलेगी. पंजाब को छोड़कर चार प्रांतों में भाजपा क़ाबिज हो गयी है. "आप" की आशाओं पर भी तुषाराघात हुआ है. गोवा में तो "आप" के कितने कैंन्डीडेट्स की

ज़मानतें जब्त हुई हैं. "आप" का खाता ही नहीं खुला वह अलग. सारे ओपिनियन और एक्ज़िट पोल फेल हो गये. उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में ८० प्र. श. सीटों पर भाजपा यशस्वी हुई जबकि दोनों प्रदेशों का जातीय समीकरण पूरी तरह भिन्न है. पांच साल पहले दिल्ली के शाही इमाम ने समाजवादी पार्टी के नाम पर फ़तवा ज़ारी किया था – समाजवादी पार्टी सत्ता में आ गयी. इस वर्ष, २०१७ में, बसपा ने लगभग १०० मुसलमानों को टिकट दिये और जामा मस्जिद से बसपा के नाम फ़तवा दिया गया. बहन मायावती को समझ ही नहीं आ रहा है कि गणित में कहां उलट-फेर हुआ? क्यों मुसलमानों और चहेते दलितों ने उन्हें वोट नहीं दिया. ज़रूर वोटिंग मशीनों में गड़बड़ी की गयी है ! पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि नोटबंदी ने आपकी सारी **"प्लानिंग"** पर पानी फेर दिया. चुनावों में वोटिंग मशीनों का उपयोग १२-१५ सालों से हो रहा है. दिल्ली और बिहार में भाजपा हारी तब कहीं कोई गड़बड़ नहीं थी. चुनाव की घोषणा के पूर्व कॉन्ग्रेस का नारा था **"सत्ताइस साल, यूपी बेहाल."** फिर युवराज राहुल गांधी तथा अखिलेश यादव को लगा कि अकेले भाजपा से जीत नहीं सकते तो हड़बड़ी में "सांप्रदायिक शक्तियों" को हराने के लिए आपस में बिहार की तर्ज़ पर गठबंधन किया. लेकिन बिहार की हार से भाजपा ने काफ़ी कुछ सीखा. अपने संगठन को काफ़ी मजबूत किया. आज भाजपा **"कैडर"** पर आधारित विश्व की सबसे बड़ी पार्टी है, जिसके २० करोड़ से अधिक निष्ठावन कार्यकर्ता हैं. मोदी की स्वच्छ छवि और सर्ज़िकल स्ट्राइक व नोटबंदी जैसे कड़े निर्णय लेने की क्षमता ने जनता का मन जीत लिया. लोगों ने बढ़-चढ़कर मतदान किया. अगड़े-पिछड़े, दलित-अतिदलित और अल्पसंख्यकों ने फ़तवा के विरुद्ध भाजपा को वोट दिया. मुस्लिम महिलाओं ने तीन तलाक का मुद्दा उठाने के लिए भाजपा को समर्थन दिया. पिछले कुछ चुनावों में लोग ध्रुवीकरण की बात करते रहे हैं. इधर पूरे देश में नगर निगम या निकायों में जहां भी चुनाव हुए हैं भाजपा ही आगे है. अगर ध्रुवीकरण हुआ है तो वह मोदी के पक्ष में हुआ है – एक आदमी जो **"सबका विकास, सबका साथ"** की बात करता है, रोज़ १६-१८ घंटे काम करता है, साल में एक दिन भी आराम नहीं करता. मैं सहर्ष यह ख़तरा उठाने लिए तैयार हूं कि मुझे लोग "मोदी भक्त" कहने लगें.

देश के कुछ तथाकथित वामपंथी व प्रगतिवादी बुद्धिजीवी और "सेकुलरिस्ट" अभी भी शुर्तुमुर्ग की तरह रेत में अपने सिर छुपाकर आंधी के गुज़र जाने की प्रतीक्षा में हैं. पिछले तीन सालों में जनता ने इन विघटनकारी शक्तियों को पहचाना है जिनके नुमाइंदे जब-तब देश के टुकड़े करने, कश्मीर और बस्तर की आज़ादी की बात करते हैं.

२०१४ की हार के बाद से अब तक कई बार राहुल गांधी कॉन्ग्रेस में बड़े परिवर्तन की बात कहते रहे हैं. क्या युवराज के अध्यक्ष बन जाने मात्र से कॉन्ग्रेस में जान आ जायेगी? "एक्सपाइरी" की तारीख़ समाप्त हो जाने के बाद आई सी यू में गांधी परिवार की ऑक्सीज़न देकर कितने दिन तक कॉन्ग्रेस को जीवित रखा जा सकता है? सबसे पहले युवराज को एक लंबी छुट्टी पर बाहर भेज देना चाहिए. कॉन्ग्रेस में समर्थ और अन्य युवा नेताओं की कमी नहीं है. कॉन्ग्रेस सेवादल को पुनर्गठित करके, गांव-गांव, शहर-शहर समाज सेवा के ठोस काम हाथ में लेना चाहिए, संगठन तैयार करना चाहिए. इसमें समय लग सकता है. बहुत से विपक्षी नेताओं ने उ. प्र. के परिणामों के बाद यह स्वीकार कर लिया है कि २०१९ में मोदी को दोबारा चुनकर आने से कोई नहीं रोक सकता. तब तक अगर कोई अप्रत्याशित न घट जाय! फरवरी के तीसरे सप्ताह में आदित्य सिन्हा नाम के एक टिप्पणीकार ने मुंबई के एक अख़बार में लिखा था कि ४७ साल के युवराज को अब शादी कर लेनी चाहिए और परिवार बढ़ाना चहिए. यदि वे अभी शादी नहीं करेंगे तो कब करेंगे? पत्नी ठोक-पीटकर, कान उमेठकर शायद उन्हें एक नये सांचे में ढाल सके, जो लाख कोशिशों के बाद संभवतया सोनिया जी न कर सकीं. यदाकदा यह भी कहा जाता है कि परिवार के किसी भी सदस्य पर व्यक्तिगत आक्षेप या टिप्पणी नहीं की जानी चाहिए. किंतु सिन्हा जी के अनुसार आज यह समय की मांग है. देश सेवा की दिशा में एक क़दम.

अतुलनीय बहुमत प्राप्त होने मात्र से बात ख़तम नहीं हो जाती. अनेक समस्याएं, चुनौतियां मुंह बाये खड़ी हैं. सबसे बड़ी समस्या आतंकवाद से निपटने की है. हाल में हुई कई रेल दुर्घटनाओं के पीछे आतंकवादियों का हाथ बताया जा रहा है. इसमें देश में पल्लवित कुछ संगठनों की भूमिका सामने आयी है. रोज़ ही रेलों से, बसों से, हवाई ज़हाज़ से व आवागमन के अन्य साधनों से असंख्य लोग यात्रा करते हैं. पूजा स्थलों में भीड़ होती है. रैलियां होती हैं, जुलूस निकलते हैं. सुरक्षा एजेन्सियां और कर्मी चौबीसों घंटे चौकसी नहीं रख सकते. वर्तमान में सीरिया की लड़ाई कुछ धीमी पड़ी है. कहीं ऐसा तो नहीं है कि "आईएस" वाले भारत में नया मोर्चा खोलने की कोशिश कर रहे हैं. कश्मीर में भी लुकाछिपी थमने का नाम नहीं ले रही. हम और आप यदि अपने आसपास कोई संदिग्ध गतिविधि देखें तो कम से कम रिपोर्ट करने में कोताही न करें. ●

सभी देशवासियों के लिए एक अच्छी ख़बर है कि ज़ीएसटी बिल पारित हो गया है और १ जुलाई २०१७ से रोज़मर्रा की सामग्री पर पूरे देश में एक-समान टैक्स लगेगा. संभावना है काफ़ी चीज़ें सस्ती हो जायेंगी. यह "अच्छे दिन" आने का प्रारंभ है.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' का १३६वां अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका का सौंदर्य और गंभीरता बरकरार है, देखकर ख़ुशी हुई. इतने जतन से कौन साहित्य की सेवा करता है, आज...?

इस अंक में 'कसाईखाना (कल्पना रमानी) और क़बरखुद्दा (डॉ. मोहसिन खान) कहानियां विशेष रूप से मुझे अच्छी लगीं. दोनों कहानियां मौज़ूदा हालात को दर्शाती हैं. मोहसिन खान की कहानी 'क़बरखुद्दा' जिसे हमारे यहां 'ग़ोरखन्दक' कहा जाता है. बेहतर यही शीर्षक होता. ख़ैर यह रचनाकार की मर्जी की बात है.

कमल कपूर की कहानी 'वृंदा ने कहा था' ने एक साथ कई समस्याओं को समेट कर आज के समय के सामने रख दी है. उन्हें बधाई. 'कथाबिंब' पत्रिका की एक विशेषता मुझे अच्छी यह लगती है कि संपादकीय में अरविंद जी पूरे अंक की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत कर देते हैं. और साथ ही साथ समसामयिक राजनीतिक संदर्भ पर भी टिप्पणी करने से नहीं चूकते हैं, जिससे प्राय: तथाकथित प्रगतिशील पत्र-पत्रिकाएं बचकर निकल जाती हैं.

– डॉ. सेराज खान 'बातिश'

३-बी, बंगाली शाह वारसी लेन, दूसरा तल्ला, फ़्लैट नं.४, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३. मो.: ९३३९८४७१९८

▶▶ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१६ अंक मिला. हमेशा की तरह दो बार पहले संपादकीय पढ़ा. प्रत्येक समझदार भारतीय के हृदय की बात आपने कही है. एक-एक बात सच और कांटे पर तुली हुई है. विपक्ष की सही आलोचना आपने की है. उसे कोई बात पसंद नहीं आती. सच्चा विपक्ष सरकार के सही क़दमों की प्रशंसा भी करता है, यहां तो बस — विरोध के लिए विरोध हो रहा है. मुझे वह ५०-६० के दशक का विपक्ष याद आता है, जो सरकार के अच्छे प्रयासों की तारीफ़ भी करता था. अब वैसे लोग कहां! राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति का खेल रह गयी है.

कहानियां — क्षमा करेंगे, कोई ख़ास पसंद नहीं आयी. कोई भी तो याद रह जाने योग्य नहीं. 'क़बरखुद्दा' अच्छी कहानी बन सकती थी, किंतु कथा शैली का अभाव है. लगातार केवल सपाट लेखकीय वक्तव्य. पात्रों के कथोपकथन से कहानी आगे बढ़नी चाहिए. 'कसाईखाना' (कल्पना रोमानी) अपेक्षाकृत अच्छी कथा है. कथावस्तु पुरानी है, किंतु अच्छी तरह लिखित भी है.

डॉ. राजम पिल्लै का आलेख 'आंडाल : सर्वहृदय शासिका' बड़ा ही ज्ञानवर्धक रहा. मुझे दक्षिण भारत की 'आलवार' परंपरा के बारे में कौतूहल था. गीता प्रेस का 'भक्तचरितांक' मेरे पास है, तथापि उससे अधिक अच्छी तरह इस लेख में उनके बारे में समझाया गया है. लेखिका, बधाई की पात्र हैं. 'कोदै' का बढ़िया चित्रण-विवरण दिया गया है.

मनहर चौहान का इंटरव्यू बहुत उत्तम रहा. पिछले साठ-सत्तर दशकों के हिंदी साहित्य जगत का बड़ा सही सटीक विवरण, विश्लेषण है. उनका प्रशंसक रहा हूं, पत्राचार भी हुआ था. उन्होंने यह ठीक कहा कि, 'पाठकों की नस पकड़ने की कला सीखनी होगी. लेखन में रोचकता बनाये रखनी होगी. गरिष्ठ, दार्शनिकता की बातें कोई नहीं पढ़ेगा.' यह सही बात है. तथापि ध्यान रखना होगा कि रोचकता के चक्कर में सड़क-छाप लेखन न हो जाये. यही तो सफल उत्तम लेखन की पहचान है. रोचकता के साथ ही समाज को सही दिशा दे सकने वाला लेखन होना चाहिए. पुनश्च: ऐसे ही वरिष्ठ लेखकों का इंटरव्यू दिया कीजिए.

– चंद्रमोहन प्रधान

आमगोला, मुज़फ़्फरपुर-८४२००२.

▶▶ 'कथाबिंब' (अक्तूबर-दिसंबर २०१६) प्राप्त हुआ. धन्यवाद.

इस अंक में प्रकाशित कहानियां 'वृंदा ने कहा

था...' और 'विकल्प' मर्मस्पर्शी हैं. 'क़बरखुद्दा' कहानी बोझिल होते हुए भी उर्दू के कुछ शब्दों से मेरा परिचय करा गयी. जैसे - कमज़र्फ, मेवाती, ग़ुस्ल, बाछड़ी, ज़कात और इशां आदि. 'क़साईखाना' कहानी भी बहुत ही अच्छी है. 'नदी, सीप और घोंघे' मुझे व्यर्थ कहानी लगी. जयराम सिंह गौर की आत्मरचना में कविता की पंक्ति — ''बांसुरी से हम बजे, इस ठांव से उस ठांव'' सुंदर है. मनहर चौहान शुरू में सरिता में छपे व 'सरिता' के संपादकीय विभाग में नौकरी भी कर चुके हैं. 'सरिता' ने बहुत से लेखकों को जन्म दिया है.

– केदारनाथ 'सविता'

नई कॉलोनी, सिंहगढ़ की गली पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी, मिर्जापुर-३१००१ (उ. प्र.).
मो.: ९९३५६८५०६८

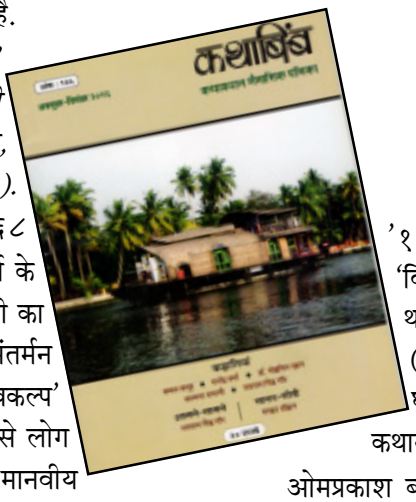

▶▶ कुछ कहानियां हमें यथार्थ के क़रीब लगती हैं. सोचे! जब वह किसी का भोगा हुआ यथार्थ हो, वह हमारे अंतर्मन तक कौंध जाता है. एक ऐसी कहानी 'विकल्प' आपकी पत्रिका में पढ़ी. वास्तव में ऐसे लोग देवपुरुष सरीखे ही हैं जो किसी की मानवीय चूक को होनी मानकर सहन कर लेते हैं. इस कहानी का सुखांत अच्छा लगा. दूसरी कहानी कसाईखाना भी अच्छी लगी. आदमी को ग़लती का अहसास तभी होता जब उस पर गुज़रती है. मां-बाप ने बच्चे को योग्य बनाया. फिर परदेस में रहकर उन्हें भूलना. अकेली रह रही मां का बेटे के घर बसना. और फिर छूत की बीमारी मानकर मां को अलग रहने की सलाह देना. यही बताता है उसने भी मां को ऐसे ही छोड़ा था. 'लेट जा भई लेट जा' कविता भले ही तुकबंदी है. कवि की सूझबूझ से अंत तक रोचक है. पत्रिका के माध्यम से मेरी जानकारी बढ़ाने के लिए आभार.

– दिलीप कुमार गुप्ता

११ छोटी वमनपुरी, बरेली (उ. प्र.)

▶▶ 'कथाबिंब' अक्तूबर-दिसंबर १६ का अंक नववर्ष के आगमन पर पाठकों को पढ़ने का अवसर मिला. अत: नववर्ष की अनंत शुभकामनाएं.

इस अंक को पढ़ते हुए संपादकीय में बहुमूल्य विचार तथा पाठकों के पत्र भी पढ़े. पढ़ते समय मन में कुछ विचार पनपे, जिन्हें एक गीत का रूप मिला. आपने विपक्षी दलों से 'सर्ज़िकल स्ट्राइक-नोटबंदी' और अन्य समस्याओं का निदान पूछा. बहुत अच्छा लगा. आपका संपादकीय विचारणीय है. मेरे अंदर भी कुछ विचार जागे.

कहानियां, कविताएं ग़ज़लें, लघुकथाएं इस पत्रिका को संपूर्ण पत्रिका बनाते हैं.

- अखिलेश 'अंजुम'

२-झ-४ दादाबाड़ी, कोटा-३२४००९ (राजस्थान).
मो.: ९४६०३९०५८९

▶▶ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं. '१६ अंक प्राप्त हुआ. कहानियों में 'विकल्प' (राजेंद्र वर्मा), 'वृंदा ने कहा था...' (कमल कपूर), 'कसाईखाना' (कल्पना रामानी) एवं 'नदी, सीप एवं घोघे' (जयराम सिंह गौर) भिन्न-भिन्न कथानक की दृष्टि से अच्छी लगीं.

ओमप्रकाश बजाज की लघुकथा 'बुलावा' व डॉ. प्रेमिल की 'प्यास' व सौरभ की 'खाटें' पसंद आयी. काव्यपक्ष, सुरुचिपूर्ण है. 'सागर-सीपी' में मनहर चौहान व अशोक वशिष्ठ की बातचीत प्रभावी है.

डॉ. राजम पिल्लै की क़लम से 'अंडाल' के संबंध में जानकारी प्राप्त हुई. एक्सरे की तरह, छोटी-बड़ी सारी ख़बरों को स्पष्टता से रेखांकित करना अंक का सर्वकालीन प्रमुख आकर्षण है.

– आनंद बिल्थरे

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१ (म. प्र.)
मो. : ८३५८९२१००५.

▶▶ केरल के प्रकृति केंद्रित मनोहारी चित्रों के माध्यम से वहां की प्राकृतिक छटा से साक्षात्कार कराता 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१६ का अंक मिला.

'कुछ कही, कुछ अनकही' के तहत आपने इस बार के संपादकीय में बहुत कह दिया है. नोटबंदी के

फ़ैसले के संदर्भ में आपने २०१४ के अपने संपादकीय के अंश को प्रकाशित कर यह ज़ाहिर किया है कि जो स्वतंत्र चेता संपादक एवं लेखक होते हैं, देश की नब्ज़ पर भी उनका हाथ रहता है और वे भविष्य की बात वर्तमान में लिख देने का माद्दा रखते हैं. मैं ऐसा मानता हूं कि आज नहीं तो कल सरकार को वे अन्य कड़े क़दम भी उठाना ही पड़ेंगे, जिनके बारे में आपने सुझाव दिये हैं.

यह अंक कहानियों और कविताओं के मामले में समृद्ध अंक रहा. लेकिन लघुकथाएं पटरी से उतरती दिखाई दीं. छोटे आकार की हर गद्य रचना लघुकथा नहीं होती. लघुकथा में कथा तत्व और ट्विस्ट होना आवश्यक है. किसी भी विचार को लिखकर उसको लघुकथा बता देना उचित नहीं है.

कविताएं सभी पठनीय एवं अर्थपूर्ण हैं. चंद्रसेन 'विराट' और राधेलाल विजघावने की रचनाओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया. 'आमने-सामने' में सिद्धहस्त कथाकार जयराम सिंह गौर अपनी कविताओं को सामने लाने के आग्रह से मुक्त होकर एक रचनाकार के रूप में अपने संघर्ष को रेखांकित करते तो पाठकों को उनकी रचनाधर्मिता को और गहराई से जानने-समझने का अवसर मिलता.

अहिंदी भाषी डॉ. राजम पिल्लै हिंदी लेखन के माध्यम से दक्षिणी राज्य की लोक संस्कृति व परंपराओं से अवगत करा कर बहुत स्तुत्य कार्य कर रही हैं. उन्हें कोटिश: बधाई! वरिष्ठ लेखक मनहर चौहान से अशोक वशिष्ठ द्वारा लिया गया साक्षात्कार अच्छा रहा. साक्षात्कार के साथ मनहरजी के लेखक को समग्र रूप से परिचित कराने के लिए छापा गया 'परिचय' स्तंभ की अपेक्षाओं को पूरी करने में मददगार सिद्ध हुआ है. अशोकजी को बधाई.

अब कुछ चर्चा अंक की कहानियों की. मैं स्वीकार करता हूं कि कहानियों के चयन में आपके चयन कौशल ने कमाल कर दिखाया है. डॉ. मोहसिन खान की कहानी 'क़बरखुदा' इस अंक की विशिष्ट उपलब्धि है. ऐसा जीवंत चित्रण कहानियों में कम देखने को मिलता है. समाज में हाशिये पर पड़े लोगों के बारे में ऐसी कहानियां अब कभी–कभार ही पढ़ने को मिलती हैं. खान साहब को दिली मुबारकबाद. कमल कपूर की कहानी 'वृंदा ने कहा था...', कल्पना रामानी की कहानी 'कसाईखाना' और 'विकल्प' (राजेंद्र शर्मा) का ताना-बाना कथाकारों ने ऐसा बुना है कि कहानियां झकझोर देती हैं. इनमें मानवीय संवेदना का स्पर्श गहराई से प्रभावित करता है. कहानी में भी बिंबों के माध्यम से बड़ी बात कही जा सकती है, यह जयरामसिंह गौर की कहानी 'नदी, सीप और घोंघे' के माध्यम से बहुत ही उम्दा ढंग से कही गयी है. कहानी का अंत लाजवाब है. कहानीकार को साधुवाद.

'कथाबिंब' वस्तुत: कथा पत्रिका है. अत: उसमें कविताएं अपवाद रूप में ही जायें तो उत्तम होगा. लघुकथाओं को कहानियों जैसी जांच-परख से गुज़ार सकें तो उत्तम होगा. लघुकथा तो आसमान में चमकने वाली बिजली जैसी होती है.

– युगेश शर्मा

'व्यंकटेश कीर्ति', ११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.
मो. ९४०७२७८९६५.

▸▸ 'कथाबिंब' में पाठकों के पत्र अपनी विशेष भूमिका अदा करने में लेखकों से भी आगे हैं. मेरी बड़ी बहन जब पत्रों को पढ़कर मुझे फ़ोन पर सुनाती है तो मैं रोमांचित हो उठती हूं. ऐसे जागरूक पाठकों को मेरा सलाम.

एक बार 'कथाबिंब' में रचना छपने के बाद पुन: रचना के प्रकाशित होने का प्रलोभन मुझे चुप नहीं बैठने देता. इसलिए प्रयास करती रहती हूं अपनी रचनाएं भेजने का और इंतज़ार आपको मेरी रचनाएं पसंद आने का.

– कोमल वाधवानी 'प्रेरणा'

'शिवनंदन' ५९५, वैशाली नगर, उज्जैन-४५६०१०
फ़ोन : (०७३४)२५२०००१, २५२५२७७

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

एक ऋतु ऐसी भी!

✍ नीरजा हेमेंद्र

'स्वर्णिम किरणें सर्वत्र बिखर चुकी थीं. ये किरणें अपने भीतर समाहित गुनगुनाहट की सुखद अनुभूति मेरे संपूर्ण वज़ूद पर करा रही थीं. कार्तिक माह की धूप सृष्टि को अपने आगोश में लेने का प्रयत्न करती वृक्षों के पत्तों पर ढंकते-छुपते कोहरे को चीर कर बमुश्किल बाहर आती दिख रही थी. धूप जब भी कोहरे को चीर कर इस प्रकार बाहर आती है तो इसका स्पर्श अत्यंत सुखद लगता है. कुछ उसी प्रकार जैसे दु:ख के पश्चात मिलने वाला मुट्ठी भर सुख भी असीमित ख़ुशियों के संसार का सृजन करता है. मौसम ने शीत ऋतु के आने की दस्तक दे दी है. उफ्फ्! तपन व गर्मी भी इस बार ख़ूब पड़ी है. जो भी हो आज यह सुबह ख़ुशनुमा है और मुझे कुछ और नहीं सोचना है. धूप और तपिश के बारे में सोचना छोड़, नकारात्मक विचारों पर विराम लगाते हुए मैं आगे बढ़ने लगी.

अभी मुझे बस स्टैंड तक पहुंचने के लिए कम से कम दो फ़र्लांग और पैदल चलना है. मैं प्रतिदिन घर से बस स्टैंड तक पैदल आती हूं. बस स्टैंड मेरे घर से लगभग एक किमी. की दूरी पर है. मैंने कलाई घड़ी पर दृष्टि डाली. आठ बजने वाले हैं. नौ बजे मुझे कॉलेज़ पहुंचना है. कुछ ही मिनटों में मैं बस स्टैंड तक पहुंच जाऊंगी. धनपत खेड़ा की पहली बस उस समय वहां खड़ी मिलती है. उसी पहली बस को मुझे लेना है. प्रतिदिन उसी बस से मैं कॉलेज़ जाती हूं. मेरा कॉलेज़ शहर के बाहरी हिस्से में बसे ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है. बस से आधे घंटे में मैं कॉलेज़ पहुंच जाती हूं.

कॉलेज़ में अध्यापिका की नौकरी ज्वाइन किये हुए मुझे दो माह हो गये हैं. नौकरी अभी अस्थायी है. किंतु संतुष्ट हूं कि मैं आत्म निर्भर हूं तथा वह कार्य कर रही हूं जो मैं करना चाहती थी.... जिसको करने का सपना बचपन से देखा था. मैं बचपन से ही अध्यापिका बनना चाहती थी. आज अध्यापन कार्य करते हुए आत्मसंतुष्टि का अनुभव कर रही हूं. मेरे पग गंतव्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं. अंतत: मैं बस स्टैंड तक पहुंच गयी. आज बस में कुछ अधिक ही भीड़ थी. भीड़ तो प्रतिदिन ही रहती है. किसी प्रकार बस में प्रवेश कर गयी. किंतु बैठने की जगह कहीं नहीं थी. कुछ लोग सीटों के बीच फंस कर खड़े थे. मैंने भी एक सुरक्षित कोना देखा और खड़ी हो गयी. इस बस में मेरे कॉलेज़ में पढ़ने वाले अनेक विद्यार्थी थे. ये प्रतिदिन धनपत खेड़ा कॉलेज़ में पढ़ने जाते हैं. शहर के आसपास बाहरी क्षत्रों में सस्ती ज़मीनों के कारण बड़े-बड़े स्कूल, कॉलेज़, छात्रावास, व्यावसायिक प्रतिष्ठान आदि बनते जा रहे हैं. किंतु उनके वित्तीय पोषण का माध्यम शहर ही हैं. इसका कारण भी है वह यह कि गांवों में शिक्षा के प्रति जागरूकता के अभाव में बच्चे उच्च शिक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं. दूसरी ओर शहरों में बढ़ती आबादी के कारण वहां के कॉलेज़ों में सीटें भर जाती हैं. ऐसी परिस्थितियों में शहरी बच्चे आसपास के गांवों के कॉलेज़ों की ओर रुख कर लेते हैं.

''मैम! आइए. यहां बैठ जाइए.'' किसी के स्वर सुन कर पलट कर मैंने पीछे की ओर देखा. यह मेरे कॉलेज़ में पढ़ने वाली छात्रा थी जो अपनी सीट से उठ कर मुझे वहां बैठने के लिए बुला रही थी. मैं उसका नाम नहीं जानती थी. किंतु यूनीफ़ॉर्म देखकर मैंने यह जान लिया था कि वो मेरे ही कॉलेज़ में पढ़ती है.

''नहीं बेटा आप बैठो! मैं ठीक हूं.'' मना करते हुए मैंने उसे वहीं बैठने का संकेत किया. बड़ों के प्रति उसके हृदय में सम्मान की भावना को देखकर मुझे अच्छा लगा.

कुछ देर में कॉलेज़ आ गया और मैं कॉलेज़ कैंपस में थी.

कॉलेज़ में शिक्षण कार्य करते हुए मुझे दो माह हो गये थे. यहां पढ़ने वाले छात्रों से धीरे-धीरे मेरा परिचय होता जा रहा था. आज जब मैं नौंवी कक्षा में अपना पीरियड लेने पहुंची तो बस वाली वो लड़की मुझे क्लास में दिख गयी. मेरी दृष्टि बरबस उसकी ओर उठ गयी. 'अच्छा तो यह नाइन्थ की छात्रा है...'

''क्या नाम है बेटा आपका?'' मेरे पूछते ही वह हड़बड़ा कर खड़ी हो गयी.

''जी...ईशिता...''

''बैठो.'' मैंने कहा और वो सकुचाते हुए बैठ गयी.

किशोरवय में बच्चियां इसी प्रकार सकुचाती...हड़बड़ाती रहती हैं. यह उम्र ही ऐसी होती है. न स्वयं को समझ पाती हैं, न दुनिया को. मैं पढ़ाती रही और वह मेरी ओर अपलक देखती रही. जैसे ही मेरी दृष्टि से उसकी दृष्टि टकराती वो दृष्टि झुका लेती. न जाने क्या ढूंढ़ रही थी वो मुझमें.

शनै:-शनै: उसी से उसके बारे में और जानकारी मुझे मिलती रही... कि वो भी वहीं से, उसी शहर से आती है जहां से मैं. वह भी सुबह की वही बस पकड़ती है जो मैं. मुझे उसके विषय में अधिक क्यों जानना? कॉलेज़ में पढ़ने वाली अनेक लड़कियों की भांति वह भी पढ़ती है. अनेक बच्चे भी वहां से आते हैं जहां से मैं. सभी से मैं एक समान वात्सल्य व स्नेह का भाव रखती हूं. सभी मुझे एक समान प्रिय हैं. फिर भी उसमें कुछ ऐसा है, जो उसे अन्य लड़कियों से अलग कर रहा है. क्या? मैं नहीं समझ पा रही हूं. बाह्य रूप से देखने में तो कुछ भी अलग व विशेष नहीं है उसमें. किशोरवय, लंबा क़द, लंबे बालों की गुथीं दो चोटियां, तीखे व सुडौल नाक-नक्श व रंगत... चैत माह में खलिहानों में बिछे नये गेहूं के दानों के समान सुनहरा गेहुंआ. हां, मुझे उसमें सबसे अलग कुछ लगा तो वो थीं उसकी काली बड़ी आंखें जो हमेशा उत्सुकता, चंचलता व सपनों से भरी रहतीं. उसकी वाचाल आंखें ही उसे सभी लड़कियों से अलग कर रही थीं. शेष सब कुछ तो किशोरवय में लड़कियों के अंदर होने वाले स्वाभाविक परिवर्तन थे. बस! तो आते-जाते ईशिता मुझे अक़्सर दिखायी देने लगी. जब भी वो मुझे दिखती मेरा ध्यान स्वत: उसकी ओर चला जाता. जिस दिन वह मुझे नहीं दिखती, मैं अनुमान लगा लेती कि वह आज कॉलेज़ नहीं आयी है.

जन्म : कुशीनगर, गोरखपुर (उ. प्र.)
एम. ए. (हिंदी साहित्य), बी. एड.
: अभिरुचियां :
पठन-पाठन, लेखन, अभिनय, रंगमंच, पेंटिंग, एवं सामाजिक गतिविधियां.
: प्रकाशन :
काव्य संग्रह 'स्वप्न', 'मेघ, मानसून और मन', 'भूमि और बारिश' कथासंग्रह 'अमलतास के फूल', 'जी हां, मैं लेखिका हूं'; उपन्यास- 'अपने-अपने इंद्रधनुष'
: सम्मान :
उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रदत्त सर्जना पुरस्कार. विजय देव नारायण साही नामित, पुरस्कार, फणीश्वर नाथ रेणु स्मृति पुरस्कार. कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार.
: संप्रति :
शिक्षिका (लखनऊ, उ. प्र.)

समय अपनी गति से आगे बढ़ता जा रहा था. इस वर्ष मेरा इस कॉलेज़ में दूसरा सत्र था. ईशिता अब दसवीं कक्षा में दिखायी देने लगी. किशोरवय का स्वाभाविक आकर्षण उसके व्यक्तित्व में दिखायी देने लगा था. नेत्रों में चंचलता, सपने व दुनिया को देखने-समझने की उत्कंठा कुछ अधिक दिखायी देने लगी थी. वह कक्षा में मन लगा कर पढ़ती. विषय से संबंधित प्रश्नों को पूछती. उसका जिज्ञासु स्वभाव मुझे अच्छा लगता.

कॉलेज़ में मेरी नियुक्ति अस्थायी थी. अनिश्चितता भरे माहौल में मैं नौकरी कर रही थी. मुझे सदैव यह भय रहता कि कहीं मेरी नौकरी छूट न जाये. संविदा पर नियुक्ति के यही नियम हैं. किंतु मुझे शिक्षण कार्य का अनुभव हो रहा था... यह भी मेरे लिए कम महत्वपूर्ण नहीं था.

धीरे-धीरे यह सत्र भी समापन की ओर था. बोर्ड परीक्षाएं प्रारंभ होने वाली थीं. फरवरी माह प्रारंभ हो चुका

था. शीत ऋतु के पश्चात हौले-हौले अंगड़ाई ले कर खुलने वाला यह मनोरम माह अपने साथ वसंत ऋतु की मादकता व नवीन छटा लेकर आता है. खेतों-खलिहानों, वृक्ष-लताओं पर तो इसकी छटा दिखायी ही देती है, मानव, पशु-पक्षी भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहते. ऋतु तो वसंत की आती है किंतु आज तक मैं इस तथ्य से अनभिज्ञ हूं कि सृष्टि पर वसंत के साथ पतझड़ की ऋतु भी क्यों समाहित रहती है? एक ओर जहां वृक्षों से पत्ते गिरते रहते हैं, वहीं वृक्षों पर नव पल्लव, नव पुष्प भी अपनी आमद दर्ज़ कराते हुए प्रतीत होते हैं. प्राचीन के साथ–साथ नवीन का यह अद्‌भुत समायोजन मेरे भीतर रहस्य का सृजन करता है. यह ऋतु तो वसंत की है किंतु पतझड़ भी तो साथ में है. क्यों? पतझड़ के साथ वसंत का अनोखा सम्मिलन ! कदाचित यही कारण है कि यह ऋतु वृक्ष-लताएं, पशु-पक्षी ही क्यों मानव के भीतर भी प्रेम और मिलन के साथ विरह और वेदना का संचार करती प्रतीत होती है.

मेरे भीतर भी कुछ इसी प्रकार की मिश्रित ऋतु ने पदार्पण कर लिया है. वसंत आया... उसके आने की क्षणिक अनुभूति हुई और कब दबे पांव चला गया. अब धूप भरा यह अबाध पथ मेरे समक्ष है जिस पर मुझे अकेले चलना है. ऋतुएं तो आती-जाती रहती हैं. समय भी अपनी गति से चलता है. मेरे कॉलेज़ में परीक्षाएं प्रारंभ हो गयी हैं. कॉलेज़ के प्रांगण में विद्यार्थियों के ग्रुप डिस्कशन और स्वाध्याय करते कुछ अधिक सक्रिय दिख रहे हैं. हों भी क्यों न? पूरे वर्ष के परिश्रम में यदि कोई कमी रह गयी है तो यही समय है उसे पूर्ण करने का. एक-दूसरे से अच्छा करने की प्रतिस्पर्धा में सभी दिख रहे हैं. अब परीक्षाएं भी समाप्त हो गयी हैं. कॉलेज़ का प्रांगण सूना हो गया है. चंद दिनों पूर्व जिस कॉलेज़ का कोना-कोना विद्यार्थियों के कोलाहल से स्पंदित रहता था वहां अब वीरानी-सी फैली है. जब कि सब कुछ पूर्ववत है... कॉलेज़ का विशाल भवन, कर्मचारी, कार्यालय, अध्यापक सब कुछ. फिर भी कितना सूनापन व्याप्त है यहां. प्रवासी पक्षियों की भांति आने-जाने वाले विद्यार्थियों के चले जाने मात्र से. यह सूनापन भी अपने भीतर कितने ऐसे शब्दों को समेटे हुए है जो कॉलेज़ की ही नहीं मानों किसी के संपूर्ण जीवन की कहानी कह रहे हों. कभी-कभी सब कुछ यथावत होते हुए भी किसी एक वस्तु की अनुपस्थिति से सब कुछ खाली-खाली-सा लगता है. उस वस्तु की अनिवार्यता जीवन में हो या न हो. कुछ इसी प्रकार की दास्तान बयां कर रहा है कालेज़ का यह सूना कैंपस इन दिनों... साथ ही साथ मुझे मेरे अतीत की ओर भी ले कर चल रहा है....

.... मेरी स्मृतियों से कैसे ओझल हो सकते हैं अतीत के वे दिन... जो मेरी ज़िंदगी के सबसे महत्वपूर्ण दिन थे. युवा उम्र... युवा दिन सबके जीवन के महत्वपूर्ण दिन ही होते हैं. मेरे भी थे. कॉलेज़ की पढ़ाई के साथ-साथ थोड़ी मौज-मस्ती, थोड़ी बेफ़िक्री, थोड़ा खिलंदड़ापन मुझमें भी था. पढ़-लिख कर कुछ बनना चाहती थी. सबसे अलग व अच्छा. डॉक्टर या प्रशासनिक अधिकारी बनने का सपना मेरी आंखों में पोषित हो रहा था. जिसको पूरा करने के लिए मैं मन लगाकर पढ़ रही थी. निर्धन व वृद्धों की सेवा करने की भावना मेरे भीतर पहले से कहीं न कहीं मौज़ूद थी, जो मुझे यह मार्ग चुनने के लिए प्रेरित कर रही थी. मन लगा कर पढ़ने के उपरांत भी मेडिकल प्रवेश परीक्षा में मेरा चयन नहीं हुआ. मैं निराश नहीं हुई. पुनः प्रयत्न किया. किंतु परिश्रम के साथ-साथ भाग्य आवश्यक होता है, जो कदाचित मेरे पास नहीं था. मेरे सहपाठियों द्वारा दिया गया सुझाव कि मैं अपने किसी मनपसंद विषय पर शोध कर किसी उच्च संस्थान में शिक्षण कार्य के लिए प्रयास कर सकती हूं, उचित लगा. मैंने अपने शहर के विश्वविद्यालय में शोध कार्य हेतु आवेदन व प्रवेश परीक्षा दी व चयनित हो गयी. मेरा अधिकांश समय पुस्तकों के साथ कभी विश्वविद्यालय में तो कभी घर में व्यतीत होने लगा. मेरे माता-पिता मेरे विवाह के लिए चिंतित रहने लगे. उनकी चिंता स्वाभाविक थी. मेरी उम्र भी तो विवाह योग्य हो ही रही थी. अतः मेरी सहमति से उन्होंने मेरे लिए लड़के देखने प्रारंभ कर दिये.

थोड़े प्रयत्नों से उन्हें संपन्न परिवार का एक अच्छा लड़का मिल गया. मेरा शोध कार्य अभी पूरा नहीं हुआ था. मैं जानती थी कि विवाह के पश्चात शोध कार्य पूरा करना असंभव हो जायेगा. क्योंकि यह कार्य पूरा समय व समर्पण मांगता है. मेरा शोध कार्य संपूर्णता के समीप था अतः विवाह करने के लिए मैंने उनसे कुछ समय की मांग की. लड़के वालों ने मुझे पसंद कर लिया था. वे विवाह के लिए मुझे समय देने के लिए भी तैयार थे. प्रसून मुझे भी ठीक लगा. वो बातें बहुत अच्छी करता था. मीठी चाशनी में घुली बातें. मुझे प्रसून को अस्वीकार करने की कोई वजह नहीं

दिखायी दी. उसके घर वालों ने बताया कि वो ठेकेदारी का कार्य करता है. मेरे पापा उसके कार्य से संतुष्ट थे. रिश्ता तय हो गया इस निर्णय के साथ कि मेरा शोध कार्य होने पर ही विवाह होगा. मुझे प्रसून के माता-पिता का शिक्षा के प्रति यह दृष्टिकोण अच्छा लगा. समय व्यतीत होता रहा. विवाह के बारे में सोचे बिना मैं अपने शोध कार्य पर पूरा समय व ध्यान दे रही थी. विवाह का क्या है, वो तो तय है ही एक दिन हो भी जायेगा. पहले अपना कार्य महत्वपूर्ण है. शनैः -शनैः समय अपनी गति से आगे बढ़ रहा था.

''सौम्या बेटा! देखो प्रसून तुमसे बात करना चाहते हैं.'' मां की आवाज़ सुनकर मैंने पलटकर देखा. अपना मोबाइल फ़ोन हाथ में लिये मां सामने खड़ी थीं.

मैं विस्मित थी. प्रसून का फ़ोन? वो मुझसे क्या बात करना चाहता है? उसने मां के नंबर पर फ़ोन कर मुझे क्यों बुलाया है? क्या बात हो सकती है?... अनेक शंकाएं मन में आ रही थीं. मैंने मां की तरफ़ बढ़कर फ़ोन उनके हाथ से ले लिया. मेरे 'हलो' कहते ही दूसरी ओर से आवाज़ आयी, ''मैंने आपको डिस्टर्ब तो नहीं किया?'' शब्दों में बेहद मिठास. वह मुझसे मेरा हाल पूछता रहा. मेरे शोध के अतिरिक्त कुछ इधर-उधर की बातें भी कीं. बातों-बातों में मेरा मोबाइल नंबर भी लिया. मेरा विवाह उससे तय था ही अतः बिना किसी दुराव-छिपाव के अपना मोबाइल नंबर उसे देना ही था.

... और प्रारंभ हो गया मेरे शुष्क जीवन में प्रेम का ख़ूबसूरत व रंगीन अध्याय. प्रसून मुझे गाहे-बग़ाहे फ़ोन करने लगा. देर रात तक फ़ोन पर प्रेम भरी बातें करता. उसकी बातें मुझे भी अच्छी लगतीं. मेरे दिन-रात प्रेम के अद्‌भुत संसार में प्रसून के साथ व्यतीत होने लगे. वह मुझसे मिलने विश्वविद्यालय में आने लगा. मेरे साथ लाइब्रेरी में बैठने लगा. एकांत स्थलों व क्षणों में मुझे स्पर्श करना व शारीरिक सीमाओं का अतिक्रमण करना उसके स्वभाव में शुमार होने लगा. यह सब कभी-कभी मुझे अच्छा लगता. मेरा विवाह उसके साथ ही होना है... ये सोच कर मैं उसका विरोध भी नहीं करती.

एक दिन उसने बताया कि, उसे लड़कों के छात्रावास में अपने किसी मित्र से मिलने जाना है. अपने साथ वह मुझे भी ले जाना चाहता है. बस! कुछ देर का ही काम है. मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी भला? मैं उसके साथ गयी. वहां छात्रावास के एक कक्ष के सामने जाकर वह रुक गया, किंतु उस कक्ष में ताला लटक रहा था. मैं सोच रही थी कि कैसा मित्र है उसका? जो उससे बिना बताये ताला लगा कर कहीं चला गया है? किंतु यह क्या? प्रसून अपनी जेब से उस कमरे के ताले की चाबी निकाल रहा था. कुछ-कुछ वस्तुस्थिति मैं समझ रही थी. प्रसून ने ताला खोला. उसके बुलाने पर मैं कमरे के अंदर गयी. उसके बाद मुझे प्रसून का वहशियों वाला जो रूप दिखा वो मुझे स्तब्ध कर गया. मुझसे शारीरिक संबंध बनाने की उसकी तीव्र इच्छा किसी बलात्कारी से कम न थी. विवाह पूर्व इस प्रकार के संबंधों के मैं खिलाफ़ थी. अतः दृढ़ता से मैंने उसका विरोध किया और कक्ष से बाहर निकल आयी.

उस दिन अपने उद्देश्य में असफल प्रसून का क्रोध देख मैं मन ही मन भयभीत हो गयी थी. किंतु अपने भय को उसके समक्ष प्रकट नहीं होने दिया. इस बात की चर्चा भी मैंने घर में किसी से नहीं की. इस लज्जाजनक घटना की चर्चा घर वालों से कर मैं उन्हें व्यथित करना नहीं चाहती थी. साथ ही मेरे भावी पति की छवि का भी प्रश्न था. मेरे माता-पिता क्या सोचेंगे उसके बारे में? बात को वहीं दबा कर मैंने अपने शोध कार्य पर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया. अंततः दिन-रात एक कर मैंने अपना शोध पूरा कर लिया. मन में कुछ करने... कुछ बनने की इच्छा पंख फैलाने लगी. इच्छाओं के विस्तृत नीले नभ में किसी परिंदे की भांति मैं उड़ने लगी. घर में मेरे विवाह की तैयारियां होने लगीं. मैंने अपनी स्वीकृति जो दे दी थी और एक दिन मेरा विवाह भी हो गया.

विवाह पूर्व मैं कभी-कभी प्रसून के साथ घूमती-फिरती थी. कभी कोई मूवी देखने, तो कभी किसी मॉल में, या किसी पार्क में. मुझे प्रसून के साथ घूमना अच्छा लगता था. यूं मेरा विवाह था तो अरेंज्ड मैरिज़ किंतु विवाह पूर्व उसके साथ घूमने-फिरने व उसके आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैं उससे प्रेम भी करने लगी थी. अतः कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता जैसे मैं प्रेम विवाह कर रही हूं. देखते-देखते मेरे विवाह को एक माह व्यतीत हो गया. कुछ दिन तो विवाहोपरांत होने वाले रस्मों-रिवाजों में निकल गये. कुछ दिन मैं मम्मी के घर पर भी रही. अब मुझे ससुराल में ही रहना था. मैं चाहती थी कि अपनी योग्यतानुसार कहीं नौकरी करूं. किंतु नौकरी इतनी सरलता से तो मिल नही

जाती.

एक दिन मुझे प्रसून के साथ कहीं जाना था. उस दिन मैंने जींस-शर्ट पहननी चाही. तो प्रसून का तमतमाया चेहरा देखने योग्य था. विवाह पूर्व मैं पाश्चात्य ढंग के कपड़े पहनती थी तो प्रसून को अच्छी लगती थी. वह सार्वजनिक स्थलों पर मेरे हाथों को पकड़े हुए बड़े गर्व से मेरे साथ चलता था. अब क्रोध क्यों? जब कि हम एक बड़े शहर में रह रहे थे, जहां विवाह बाद पाश्चात्य ढंग के कपड़े पहनना आम बात थी. बात मात्र पाश्चात्य ढंग के कपड़े पहनने और न पहनने की ही तो थी नहीं. प्रसून की इच्छा और ख़ुशी यदि इतनी-सी बात में थी, तो मुझे उसकी बात मानने में क्या आपत्ति हो सकती थी? मुझे आपत्ति तो तब होने लगी जब प्रसून बिना किसी बात पर मुझ पर चिल्लाने लगा था. ग़लती न होने पर भी कोई न कोई कमी निकाल कर मुझ पर हाथ उठाना उसका स्वभाव बनने लगा.

उसके घर में रह कर मुझे यह भी पता चला कि वह कोई ठेकेदार नहीं बल्कि बेरोज़गार था. उसकी मां के तानों से मुझे यह भी पता चला कि मुझसे विवाह करने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि पीएच. डी. करने के पश्चात मुझे शीघ्र किसी कॉलेज़ में नौकरी मिल जायेगी. नौकरी मिलने में हो रहा विलंब उनकी आशाओं पर पानी फेर रहा था. मुझे प्रताड़ित करने की नीयत से एक दिन प्रसून ने मुझे बताया कि विवाह पूर्व उसके संबंध कई लड़कियों से रह चुके हैं, अनेक लड़कियों से अब भी उसकी मित्रता है. वह जब चाहे बाहर किसी भी लड़की के साथ संबंध बना सकता है. उस विवाह से मैं स्वयं को ठगा हुआ महसूस कर रही थी. किंतु मैं वह रिश्ता निभाना चाहती थी या कह सकते हैं विवश थी. कारण? हमारी संस्कृति में पति-पत्नी को जन्म-जन्मांतर तक एक दूसरे का साथ देने की अवधारणा मुझे वह रिश्ता निभाने या कह सकते हैं ढोने के लिए विवश कर रही थी. जरा सी त्रुटि होने पर प्रसून मुझे पीटता. उसके माता-पिता दहेज कम लाने के ताने देकर मुझे मानसिक रूप से प्रताड़ित करते.

''तुम्हारी मम्मी जब देखो तब दहेज कम लाने की बात कहती हैं.'' एक दिन सब्र का बांध टूटने पर मैंने प्रसून से कहा.

''तो इसमें ग़लत क्या है? मेरे लिए ऐसे-ऐसे घरों से रिश्ते आ रहे थे जो मुझे व्यवसाय करने के लिए मोटी रकम दे रहे थे. किंतु मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी. तुमसे यह सोच कर विवाह कर लिया कि पीएच. डी. कर रही हो तो शीघ्र नौकरी मिल जायेगी. न जाने कैसी है तुम्हारी पीएच. डी. जो तुम्हें अब तक नौकरी नहीं मिली?''

प्रसून की बातें सुन कर मैं अवाक थी... सदमें में थी. इस समस्या का समाधान इन लोभियों से झगड़ कर निकलने वाला नहीं है, यह बात मैं समझ गयी थी. मेरे बचते-बचते भी उस दिन झगड़ा बढ़ ही गया और प्रसून ने मुझ पर हाथ उठा ही दिया. परिणाम स्वरूप मेरे दाहिने कान ने कुछ देर तक सुनना बंद कर दिया. मेरे उस कान के सामान्य होने में महीनों लग गये. वह शारीरिक संबंध बनाते समय किसी

गीत

आत्मकथ्य

✍ आनंद तिवारी पौराणिक

अलसाई पलकों में
सपने पसर रहे,
हृदय कैनवस पर
रंग से बिखर रहे.
जब से धरे तुमने
अधरों पर नेह बोल,
सिंदूरी दिन हुए
रेशमी कपोल.
आंचल के छोर में
अवगुंठित, यायावर मन,
गुंफित और कीलित
निर्वासित-सा तन.
अभिव्यक्ति अंतस की
स्वीकृति सम्मोहन की.
दीर्घ निश्वास दे रही
बाहों में आलिंगन को.
आकाश भर रही,
उद्घाटित हो रहे अनकहे तथ्य.
सरेआम कह रही
तुम आत्मकथ्य.

श्रीराम टाकीज़ मार्ग,
महासमुंद -४९३४४५ (छ. ग.)

दरिंदे की भांति व्यवहार करता. मैं पीड़ा से कराह उठती. कई-कई दिनों तक चलने-फिरने में पीड़ा होती. ऐसा वह जान-बूझ कर मुझे प्रताड़ित करने के लिए करता. उसके पास जाने में मेरे रोंगटे खड़े हो जाते. भय लगता.

जब सभी कुछ असह्य हो गया, तब मैंने मां को अपनी पीड़ा से अवगत कराया. मां से मैंने स्पष्ट कह दिया कि यदि मुझे यहां से बुलाया नहीं गया तो मैं जीवित नहीं रह पाऊंगी. मां ने मुझे बुला लिया. प्रसून से तलाक लेना मेरे जीवित रहने के लिए आवश्यक था. मैं उस नारकीय जीवन से निकल गयी. शीघ्र ही मुझे इस कॉलेज़ में अध्यापन कार्य मिल गया है. अस्थायी ही सही किंतु मैं संतुष्ट हूं. विद्यार्थियों से जुड़ना, उनसे बातें करना अच्छा लगता है. शिक्षक मात्र शिक्षा ही नहीं देता बल्कि वह सीखने की एक सतत प्रक्रिया से भी गुज़रता रहता है. मैं भी इस प्रक्रिया से रूबरू हो रही हूं. अतीत की कटु स्मृतियों को अपने मन-मस्तिष्क से बाहर ढकेलते हुए मैं वर्तमान में जीना चाहती हूं. किंतु कभी-कभी अतीत वर्तमान के पीछे-पीछे चलता प्रतीत होता है.

कॉलेज़ की वार्षिक परीक्षाएं समाप्त हो गयी हैं. ग्रीष्मावकाश प्रारंभ हो गया है. एक दिन मां ने बताया कि मुझसे मिलने मेरे कॉलेज से कोई लड़की आयी है. मां ने उसे ड्राइंगरूम में बैठा दिया था. मैं सोच रही थी कि कौन हो सकता है? और मुझसे क्या काम हो सकता है? विचारों के उथल-पुथल को विराम देते हुए मैंने ड्राइंग रूम में जाकर देखा तो वहां ईशिता बैठी मिली.

''कहो क्या हाल है?'' मैंने पूछा और वह हड़बड़ा कर खड़ी हो गयी.

''नमस्ते मैडम,'' उसने कहा. मैंने उसे बैठने का संकेत किया.

उसके चेहरे पर संकोच के भाव थे. वह दृष्टि झुकाकर चुपचाप बैठी थी. उसे चुप देख मैंने बात प्रारंभ की.

''पिछले सप्ताह तुम्हारा परीक्षा परिणाम निकल आया. कैसा रहा?''

''मैं पास हो गयी मैम.'' उसके चेहरे पर प्रसन्नता छलक उठी.

''शाबाश! बहुत अच्छी बात है.'' उसका उत्साहवर्धन करते हुए मैंने कहा. वह मुस्करा कर मेरी ओर देख रही थी.

''आगे भी इसी प्रकार मन लगाकर पढ़ना.'' समर्थन में उसने सिर हिला दिया. उसके चेहरे पर मुस्कान क़ायम थी पूर्ववत. पुन: वह चुप थी.

बातों का तारतम्य आगे बढ़ाते हुए मैंने ही पूछा, ''तुम्हें मेरे घर का पता कैसे मिला?''

''मैम, हमारे कॉलेज़ में वो शशांक पढ़ता है न? बी. ए. में?'' उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा, गोया मैं शशांक को जानती हूं. जब कि मुझे शशांक नाम का कोई विद्यार्थी इस समय याद नहीं आ रहा था.

''उसने ही मुझे आपके घर का पता बताया. वो भी आपके घर से बस कुछ ही दूरी पर रहता है.'' उसने मुझे समझाते हुए अपनी बात पूरी की.

कुछ देर तक वो ख़ामोश बैठी रही. मैं भी.

''ये लीजिए मैम!'' उसके हाथों में एक डिब्बा था. जो संभवत: मिठाई का था. मैं असहज हो उठी.

''नहीं... नहीं... इसकी क्या आवश्यकता है?'' तत्काल मेरे मुख से निकल पड़ा.

''मैम! मेरी प्रसन्नता के लिए रख लीजिए.'' उसने हठपूर्वक कहा.

''विद्यार्थी जब परीक्षा में सफल होते हैं तो वो क्षण किसी भी शिक्षक के लिए सर्वाधिक प्रसन्नता का होता है. उसे इन चीज़ों की आवश्यकता नहीं होती.'' मैंने आग्रह व आदेश दोनों का प्रयोग करते हुए वो डिब्बा उसे वापस किया.

कुछ देर और रुकने के पश्चात ईशिता घर जाने लगी. मैं गेट तक उसे छोड़ने आयी. मैंने देखा गेट पर एक युवक बाइक लिए खड़ा है. उस युवक ने हेलमेट पहन रखा था अत: मैं उसे पहचान नहीं पायी. छुट्टियां समाप्ति की ओर थीं. मुझे नये सत्र के लिए भी कॉलेज़ से नियुक्ति पत्र मिल गया था.

प्रथम दिन कॉलेज़ कैंपस में विद्यार्थियों की चहल-पहल देख मेरे भीतर कॉलेज़ के दिनों की स्मृतियां दस्तक देने लगीं. कितनी उत्सुकता, चंचलता, उमंग तथा मनचाहा सब कुछ पा लेने की उत्कंठा होती है उन दिनों. कुछ बच्चे सब कुछ पा लेते हैं. तो किसी को लंबी जद्दोज़हद करनी पड़ती है कुछ भी पाने के लिए. कुछ मृगमरीचिकाओं के पीछे भागते हैं... देर तक भागते हैं... तब जाकर स्पष्ट होता है कि यह मात्र भ्रम था... जल नहीं.

''नमस्ते मैम!'' ईशिता खड़ी थी मेरे समक्ष. यद्यपि

सभी विद्यार्थी नये व अच्छे लग रहे थे, किंतु ईशिता आज मुझे बहुत आकर्षक व पहले से काफ़ी बदली हुई लग रही थी. सीधी-सादी दो चोटियों का स्थान आकर्षक ढंग से बंधे बालों ने ले लिया था. आंखें कुछ अधिक चंचल व स्वप्निल हो रही थीं. चेहेरे पर किशोरावस्था से युवावस्था की ओर बढ़ता हुआ स्वाभाविक आकर्षण तथा सौंदर्य विद्यमान था. कुल मिलाकर आज की ईशिता मुझे अच्छी लगी.

धीरे-धीरे कॉलेज़ में शिक्षण कार्य में गति आने लगी. कक्षाएं नियमित व समयबद्ध हो गयीं. ईशिता प्रतिदिन कॉलेज़ आती किंतु वो मुझे बस में नहीं मिलती. कदाचित उसे घर से कोई छोड़ने आता हो या किसी अन्य साधन से आती हो. ठीक ही है, बस में धक्के खाने से अच्छा ही है कि उसे घर से कोई छोड़ने व लेने आ जाये. एक दिन बस से उतरकर मैं कॉलेज़ के गेट की ओर बढ़ ही रही थी कि सहसा मेरी दृष्टि ईशिता पर पड़ गयी. वह एक युवक की मोटर सायकिल से उतर रही थी. मैंने अनुमान लगाया कि हो न हो यह वही युवक है जो उस दिन मेरे घर से ईशिता को लेने आया था. चेहरा तो मैं नहीं देख पायी, किंतु डीलडौल से कुछ-कुछ वैसा ही लग रहा था. वह युवक डिग्री सेक्शन की ओर मुड़ गया तथा ईशिता इंटर सेक्शन की ओर. मुझे समझते देर न लगी कि यह लड़का भी इसी कॉलेज़ का छात्र है. कुछ ही समय पश्चात पता चल गया कि वह लड़का कोई और नहीं शशांक ही था.

धीरे-धीरे दिन व्यतीत होते जा रहे थे. छः माह व्यतीत हो गये. दिन बदले, ऋतुएं बदलीं. शीत ऋतु का आगमन हो गया. सृष्टि ने भी शीत के प्रकोप से बचने के लिए कोहरे की चादर लपेट ली थी. वो शीत ऋतु में अवकाश का ही कोई दिन था जब ईशिता मेरे घर आयी. मां ने उसे ड्राइंग रूम में बैठा दिया. ईशिता दूसरी बार मेरे घर आयी थी.

''ईशिता तुमसे मिलने आयी है.'' मां उसे उसी समय से पहचानती थी जब वो पहली बार मेरे घर आयी थी.

''कहो क्या हाल है? कैसे आना हुआ?'' मेरे पूछने पर ईशिता चुप रही.

''सब ठीक तो है? मेरे पूछने पर उसने स्वीकृति में सिर हिलाया किंतु चुप ही रही. किसी संशय और उहापोह की स्थिति में लगी वह मुझे. मैं अनुमान लगा रही कि इस वर्ष ईशिता ग्यारहवीं कक्षा में गयी है. इस वर्ष पढ़ने का तनाव कम होता है. क्योंकि इस कक्षा में बोर्ड की परीक्षाएं नही होतीं. फिर ईशिता चुप क्यों बैठी है, और मुझसे क्या चाहती है? अव्वल वो कुछ बता ही नही रही तो मैं क्या करूं? इसी उहापोह की स्थिति में मैं भी चुप बैठी रही. कुछ देर तक लगभग... दस मिनट तक कमरे में सन्नाटा पसरा रहा...

''मैम! मैं शशांक से विवाह करना चाहती हूं.'' उसकी दृष्टि नीचे झुकी थी. उसके होठों से अस्फुट से शब्द निकल रहे थे.

''क्या?'' अब विस्मय से चौंकने की बारी मेरी थी.

''मैं शशांक से प्रेम करती हूं.'' उसने पुनः धीमे स्वर में कहा.

उसकी बातें सुनकर मैं आश्चर्यचकित तो थी ही. मैं यह भी जानती थी कि इस उम्र में ऐसी नादानी व बेवकूफ़ियां बच्चे कर ही जाते हैं. किंतु ईशिता के इस प्रकरण से मुझे क्या लेना-देना? मैं समझ नहीं पा रही थी कि मुझे उसके पारिवारिक जीवन से कब व कहां सरोकार होने लगा था? मैं उसके विद्यालयी विशेषकर शिक्षण संबंधी समस्याओं के लिए नियुक्त थी. मेरे घर आकर मुझसे बताने का क्या अर्थ है? ये बात उसे अपने परिवार से या शशांक के परिवार से बताना चाहिए. इन सभी बातों के साथ इस समय मैं गुरू-शिष्य परंपरा का निर्वाह करते हुए उसे सही मार्गदर्शन अवश्य दूंगी.

''बेटा! पहली बात यह कि तुम्हें ये सब कुछ अपने घर वालों को बताना चाहिए.'' वह चुपचाप सिर झुकाये मेरी बातें सुन रही थी.

''दूसरी बात यह कि जीवन का इतना बड़ा फ़ैसला लेने से पूर्व तुम्हें पूर्ण शिक्षित व आत्मनिर्भर होना चाहिए.'' मेरी बात सुनकर ऐसा लगा जैसे मेरी बातों का कोई प्रभाव ही उस पर न पड़ रहा हो. वह उसी प्रकार सिर झुकाये मेरी बात सुन रही थी किंतु चेहरे के भावों में कोई परिवर्तन नहीं था.

''मैं पढ़ूं या न पढ़ूं... आत्मनिर्भर बनूं या न बनूं. उसके साथ किसी भी परिस्थिति में मैं रह लूंगी.'' उसके चेहरे पर मासूमियत थी. किंतु उसकी बातों में दृढ़ता व इरादों में ज़िद देखकर मैं मायूस थी. मेरा उससे कुछ भी कहना अब मायने रखता नहीं था.

''आपको देखकर मेरे हृदय में अपनेपन की अनुभूति होती है अतः अपने मन की बात आपसे कहना चाहती थी.

इसीलिए आपके पास चली आयी.'' ईशिता कुछ देर तक बैठी रही. मेरे व उसके बीच पुन: कोई बात नहीं हुई. वो चली गयी.

उसके जाने के पश्चात मैं सोचती रही... उम्र के इस अल्हड़ व नाजुक पड़ाव पर किन नादानियों में वह उलझ गयी है. इस उम्र की वो अनुभूति जिसे वह प्रेम कह रही है विवेकहीन व अंधा होता है. कभी-कभी मात्र शारीरिक आकर्षण भी. किंतु यह बात वह कहां समझ पा रही है....

शनै:-शनै: दिन व्यतीत होते रहे. मैं भी घर व कॉलेज़ के उत्तरदायित्व में व्यस्त रही. व्यस्तता के उपरांत भी कभी-कभी मुझे ईशिता की याद आ जाती... क्या चल रहा होगा उसके जीवन में? सब कुछ ठीक हो उसके साथ, मन यही कहता. इधर कई दिनों से ईशिता कॉलेज़ में नहीं दिख रही थी. पहले बस से आती-जाती थी तो प्राय: दिख जाती किंतु इधर न जाने कब से वह कॉलेज़ नहीं आ रही है? मैंने ध्यान नहीं दिया. धीरे-धीरे एक माह हो गया वो नहीं दिखी. विद्यार्थियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह अस्वस्थ है. यह कैसी अस्वस्थता है कि एक माह से अधिक हो गया ठीक नहीं हो रही? मन असमंजस की स्थिति में व्याकुल रहा. अंतत: कॉलेज़ के प्रिंसिपल तक मैंने ये बात पहुंचायी. तत्पश्चात एक दिन उसके घर गयी. दरवाज़ा ईशिता की मां ने खोला. मुझे उसकी मां ही बीमार दिख रही थीं. उनकी आंखों में गहरी पीड़ा भरी थी. यह जानकर कि मैं उसके कॉलेज़ की शिक्षिका हूं, उनका चेहरा क्षणिक प्रसन्नता से चमक उठा. औपचारिक अभिवादन के पश्चात मैंने बताया कि, ''मुझे कॉलेज़ की ओर से भेजा गया है. ईशिता कई दिनों से कॉलेज़ नहीं जा रही है.'' मेरे इतना कहते ही ईशिता की मां छत की ओर देखने लगीं. उनके नेत्र सजल हो उठे. बोलीं कुछ भी नहीं.

''क्या हुआ? वो ठीक तो है. घर में नहीं है क्या?'' उनकी दशा देखकर एक साथ कई प्रश्न मैंने कर डाले. मेरे सहानुभूति पूर्ण शब्दों का स्पर्श पाते ही वे खुलने लगीं.

''क्या बताऊं मैडम जी! वो घर में ही है. बाहर निकलने में डरती है. न समय से कुछ खाती है न पीती है. डॉक्टर के पास भी जाने को तैयार नहीं है. कोई दवा भी नहीं लेती. कहती है नींद नहीं आती. कहीं भी अच्छा नहीं लगता. अकेले रहती है. कुछ समझाओ तो रोने लगती है. हमारी बातें ज़हर के समान लगती हैं उसे.'' ईशिता की मां धीमे स्वर में उसके बारे में बताने लगी. आवाज़ इतनी धीमी कि कहीं कोई सुन न ले. कदाचित वो बातों को इशिता से छुपाना चाह रही थीं.

ईशिता की मां लंबी सांस ले कर चुप हो गयी थीं. मैं हतप्रभ सुन रही थी.

''इकलौती लड़की है हमारी. न जाने उसके भाग्य में क्या लिखा है?'' कुछ देर चुप रहने के पश्चात उन्होंने पुन: कहा. मैं ध्यान से उनकी बातें सुन रही थी.

''दिन भर मोबाइल पकड़े रहती है. न जाने उसमें क्या देखा करती है? क्या ढूंढ़ा करती है?''

''ईशिता है कहां?'' मैंने उसकी मां से पूछा.

उसकी मां अंदर गयीं और कुछ देर में ईशिता को लेकर आ गयीं.

मैं ईशिता को देख कर अवाक थी. उसके चेहरे पर से किशोरवय का आकर्षण न जाने कहां विलुप्त हो गया था. आंखें नींद से बोझिल थीं. वह आकर चुपचाप बैठ गयी.

''क्या हुआ ईशिता?'' मैंने पूछा. उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट दिखी.

''जी तबियत ठीक नहीं रहती.'' कह कर चुप हो गयी. मैंने देखा उसके हाथ में मोबाइल फ़ोन था. उसको मेरे साथ बातें करते देख उसकी मां कमरे से स्वत: चली गयी थीं.

''मैम! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं.'' कुछ देर की ख़ामोशी के पश्चात उसने कहा.

''हां... हां... कहो.'' ईशिता मेरे समीप आकर बैठ गयी थी.

''मैम! मैं शशांक से प्रेम करती हूं.'' कह कर ईशिता धीरे-धीरे सिसकने लगी.

''पहले वह दिन-रात फ़ोन पर मुझसे बातें करता था, अब फ़ोन नहीं उठाता. यदि एक बार भी वह मेरा फ़ोन उठा ले तो मैं स्वस्थ हो जाऊंगी.'' ईशिता कहती जा रही थी तथा सिसकती जा रही थी.

''मैम! ईश्वर के समक्ष वह मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर चुका है. फिर भी मैं उसे विस्मृत करना चाहती हूं. पर कैसे? मैं कैसे उसे विस्मृत करूं?''

''कभी-कभी मुझे लगता है कि उसे विस्मृत करने के प्रयास में मैं कहीं विक्षिप्त न हो जाऊं?... जितना उसे भूलने का प्रयास करती हूं वो मुझे उतना अधिक याद आता है.''

वह रुक-रुक कर कहती जा रही थी.

''मैम! मैं उसके बिना जीना नहीं चाहती. आत्महत्या करने के विचार मन में आते हैं.'' कह कर ईशिता रोने लगी. मैं सन्न थी उसकी बातें सुनकर. किशोरवय की नादानी में उससे जो छल किया गया है उसके कारण कदाचित वो अवसाद में है. इस उम्र में यह समस्या उसके लिए घातक हो सकती है. समस्या बढ़े उससे पहले ही उसे मनोचिकित्सक को दिखाना आवश्यक था. अब तक उसके घर वालों ने उसे किसी चिकित्सक को दिखाया नहीं था. कारण यह था कि ईशिता चिकित्सक के पास जाने को क़तई तैयार नहीं थी.

''बेटा! तुम परेशान न हो सब ठीक हो जायेगा.'' इससे अधिक उस बच्ची से मैं और क्या कह सकती थी. मुझे उसके घर वालों को यह अवश्य बताना था कि उनका ईशिता के लिए किसी चिकित्सक से मिलना कितना आवश्यक है.

ईशिता को आराम करने के लिए कमरे में भेज कर मैंने उसकी मां से ईशिता की समस्या की गंभीरता के विषय में चर्चा कर, उन्हें तत्काल किसी चिकित्सक से परामर्श करने हेतु कहा. मैं वहां से चली आयी.

... घर आ कर मैं सोचती रही कि क्या यह प्रेम नादान उम्र के साथ-साथ कहीं न कहीं उससे अधिक मोबाइल फ़ोन और दिन-रात चैट का परिणाम नहीं है? ईशिता का आभासी दुनिया में अपना काल्पनिक प्रेम ढूंढ़ना इसी बात की ओर ही तो इंगित कर रहा है. यह आभासी दुनिया बच्चों के कोमल हृदय पर कल्पनाओं का जो उलझा हुआ जाल बुन रही है, बच्चे उसमें उलझते जा रहे हैं. जहां से निकलना उनके लिए पीड़ादायक होता जा रहा है. एक ईशिता ही नहीं मेरे समक्ष कई अन्य दृष्टांत आये हैं जिनके दुष्परिणाम से मैं परिचित हूं. मैं चुपचाप कमरे में लेट गयी. नेत्रों में दूर-दूर तक नींद नहीं थी. विचारों का प्रवाह तीव्र हो उठा. इस समय मैं स्वयं को ईशिता जैसी ही नासमझ पा रही थी. जब मैं प्रसून द्वारा छली गयी तब परिपक्व थी. ईशिता जैसी नहीं. मेरी शिक्षा पूरी हो चुकी थी. प्रसून से भावनात्मक रूप से जुड़ चुकी थी. भावनाएं कभी-कभी यथार्थ देखना नहीं चाहतीं. संवेदनशीलता स्त्री के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण होता है. किंतु इस विशिष्टता का ऋणात्मक बिंदु यह है कि इसी कारण स्त्री छली भी जाती है. उसके इसी रूप का लाभ पुरुष उठाता है. फ़ेसबुक, चैट बॉक्स और फ़ोन का सदुपयोग किशोर उम्र के बच्चे उतना नहीं करते जितना इसका दुरुपयोग कर मानसिक स्तर पर दुर्बल हो जाते हैं. वे इस आभासी संसार के इर्द-गिर्द दिन-रात रहना चाहते हैं. सड़कों पर चलते हुए, गाड़ी चलाते हुए और तो और भीड़ भरे व उत्सव के माहौल में भी उंगलियां फ़ोन के स्क्रीन पर घूमती रहती हैं. आभासी संसार का सम्मोहन मृगमरीचिका की भांति है. ईशिता को भी यह आभासी संसार अपने सम्मोहन से बाहर नहीं निकलने दे रहा है.

ईशिता ने उस वर्ष परीक्षा नहीं दी. परीक्षा देती भी तो कैसे? वह मानसिक शून्यता और अवसाद की गिरफ़्त में आ गयी थी. बीच-बीच में मैं ईशिता का हाल लेने उसके घर जाती रहती. यद्यपि वह उपचार नहीं चाहती थी. किंतु उसके माता-पिता ने उसको चिकित्सक को दिखाया तथा किसी प्रकार उसको दवाएं दी गयीं. यह उनका समझदारी भरा क़दम था. समय के साथ तथा आवश्यक उपचार से ईशिता धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी. शशांक आते-जाते कभी-कभी मुझे कॉलेज़ में दिख जाता. उसने अपनी ग्रेजुएशन की अंतिम वर्ष की परीक्षा दी तथा आगे की शिक्षा के लिए आवेदन भी किया.

मैं शशांक को कभी ग़लत नहीं कहूंगी. जहां तक मैं समझती हूं उसने ईशिता का शारीरिक दुरुपयोग नहीं किया है. थोड़ा-सा धैर्य व नियंत्रण ईशिता के लिए भी आवश्यक था. किंतु किशोरवय अल्हड़, नादान व संवेदनशील होता है. उस उम्र में धैर्य व नियंत्रण कभी-कभी बच्चों के हाथ से कब फिसल जाते हैं, वे ये समझ नहीं पाते. ईशिता जैसी समझदार व शालीन बच्ची की दशा ने मुझे भीतर तक झकझोर दिया. मैं ईशिता से मिलने उसके घर जाती रहती. मैं जानती हूं कि इस स्थिति में उसके लिए मानसिक संबल, सांत्वना के साथ-साथ बातचीत भी आवश्यक है. उसे एकांत से बाहर निकालना होगा. समय के साथ सब ठीक हो जायेगा.

समय सबसे बड़ा चिकित्सक होता है. समय के साथ ईशिता स्वस्थ हो गयी. अगले वर्ष उसने कॉलेज़ में पुन: प्रवेश लिया. कॉलेज़ आने लगी. उसके डगमगाये आत्मविश्वास को वापस लाने के लिए मैं उसका साथ दे रही थी. ईशिता आगे बढ़ती जा रही थी. शिक्षा में भी, जीवन में भी.

.... देखते-देखते छ: वर्ष व्यतीत हो गये. उसी कॉलेज़ में मेरी नौकरी स्थायी हो गयी. मैं अकेले अपने जीवन का सफ़र तय कर रही थी... किंतु अकेले कहां हूं

मैं? मेरा आत्मविश्वास मेरे साथ है. ईशिता की शिक्षा पूरी हो चुकी थी. वह नौकरी के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रही थी. मुझसे मिलने वह मेरे घर आती रहती. अपनापन का अटूट रिश्ता स्थापित कर लिया था उसने मेरे साथ.

''मैम! बहुत दिनों से मेरे मन में आपको लेकर एक प्रश्न उठ रहा है. यदि आपकी आज्ञा हो तो पूछूं?'' एक दिन ईशिता ने मुझसे कहा. ईशिता मेरे साथ गुरू-शिष्य के सम्मानजनक रिश्ते के साथ-साथ कुछ मित्रवत हो चली थी. प्रश्न पूछने के उसके इस ढंग से मैं मन ही मन मुस्कुरा पड़ी. अच्छा लगा.

''हां...हां... पूछो.'' मैंने कहा.

''मैम! आपका विवाह हो चुका है?'' मुझे उससे इस प्रकार के अनौपचारिक प्रश्न की आशा क़तई नहीं थी.

''हां...'' मैंने उसकी आंखों में देखते हुए कहा.

''आप अपनी मां के पास क्यों रहती हैं?'' उसका प्रश्न सुन कर मैं चकित होती जा रही थी.

''बस यूं ही...'' अपनी भावनाएं छुपाते हुए उसे टालने के लिए मैंने कहा.

''मैम! आपका वैवाहिक जीवन सफल नहीं है. यही बात है न?'' उसके इस प्रश्न से अंदर तक मैं हिल चुकी थी. किंतु चुप थी.

''मैम! वैवाहिक जीवन ही तो सब कुछ नहीं होता? किसी लड़की की योग्यता को उसके सफल वैवाहिक जीवन से आंका जाना आवश्यक क्यों होता है? जबकि यही पैमाना किसी लड़के की योग्यता को नापने के लिए आवश्यक नहीं होता? ... आपका अपना जीवन सफल है. आप शिक्षित व आत्मनिर्भर हैं. विद्यार्थियों को शिक्षा देती हैं. मेरे जैसे भटके हुए अनेक को मार्गदर्शन भी. ... तो आप असफल कैसे हैं?... मेरे इस प्रश्न से आपके चेहरे पर संशय व उदासी का छा जाना इस बात की ओर संकेत नहीं कर रहा कि आप भी वैवाहिक जीवन की सफलता को जीवन की सफलता मानती हैं?... स्त्री के साथ ही पुरुष का भी वैवाहिक जीवन असफल होता है किंतु इसकी पीड़ा का दंश स्त्री ही क्यों भोगती है?...''

मैं ईशिता की ओर देखे जा रही थी. क्या ईशिता इतनी समझदार हो गयी है? वह जीवन को इतने समीप व यथार्थपरक ढंग से समझने लगी है. सच उसने जीवन को कितने सुंदर व सही तरीक़े से समझा है.

''मैम! आप इतनी अच्छी हैं. बिना झिझक आप कह सकती हैं कि आपका पति आपके योग्य नहीं था.''

ईशिता की बातें सुनकर मैं मुस्करा पड़ी. मेरे चेहरे पर व्याप्त हो गयीं गर्व की रेखाओं को ईशिता ने देख लिया था. मेरे साथ वह भी मुस्करा पड़ी.

मुझसे पुन: मिलने के वादे के साथ ईशिता चली जा रही थी. उसके क़दमों की दृढ़ता को देखकर मैं गौरवान्वित थी. मन ही मन ऊपर वाले का आभार व्यक्त करते हुए यही प्रार्थना कर रही थी कि बच्चे जीवन में कभी भ्रमित न हों. यदि ऐसा दुर्भाग्य आ भी जाये तो निराश न हों. जीवन ईश्वर का दिया अनमोल उपहार है. उसे समाप्त करने का अधिकार किसी और को नहीं है. कोई भी परिस्थिति जीवन से बड़ी नहीं होती. ... सही समय पर ईशिता सब कुछ समझ गयी.

समय अपनी गति के साथ आगे बढ़ता जा रहा है. ... छ: माह और व्यतीत हो गये. ... एक दिन घर्र... घर्र... घर्र... फ़ोन की घंटी बज रही थी. मैं कॉलेज़ जाने की तैयारियों में व्यस्त थी. अत: उठा न सकी. कॉलेज़ पहुंच कर देखा फ़ोन ईशिता का था. न जाने क्या कहना चाहती है वो. अत: मैंने पलट कर उसे फ़ोन मिलाया.

''हलो मैम! प्रणाम.'' उधर से उसकी आवाज़ आयी.

''हां... हां... बताओ.'

''मैम! मैंने पी. सी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है. यह प्रसन्नता सबसे पहले आप से साझा कर रही हूं.'' ईशिता ने पुन: मुझे स्तब्ध कर दिया था. प्रसन्नता के कारण गले से शब्द नहीं निकल पा रहे थे.

''मैम! आज ही नेट पर परीक्षा का परिणाम आया है.'' उसने कहा.

''ख़ुश रहो बेटा! विकास के सोपानों पर इसी प्रकार आगे बढ़ती रहो.'' मेरा हृदय ईशिता के लिए अनेकानेक आशीषों से भर गया.

''जी मैम! आपकी शिष्या हूं. आपकी आशाएं धूमिल न होने पायें ऐसा प्रयत्न करती रहूंगी.'' मेरे नेत्र सजल होने लगे थे. ये अश्रु प्रसन्नता के थे. अमूल्य थे.

''नीरजालय,'' ५१०/७५,
न्यू हैदराबाद, लखनऊ- २०६००७.
मो. : ९४५०३६२२७६.
ई-मेल : neerjahemendra@gmail.com

मां के चले जाने के बाद

✍ डॉ. रमाकांत शर्मा

उसका मूड बहुत उखड़ा हुआ था. आज उन्होंने फिर ऐसी बात कह दी थी जो उसे बेतरह चुभती थी. बाबू जी कब समझेंगे कि वे उसके लिए बोझ नहीं, उसकी जान हैं. पर, बाबू जी थे कि हमेशा उसे यह अहसास कराते रहते थे कि वे उस पर बोझ हैं. उसकी पूरी कोशिश रहती थी कि उन्हें कोई कष्ट न हो. वे जो कुछ भी चाहते, वह जल्दी से जल्दी उसे पूरा करने की कोशिश करता. पर, उसे कोफ़्त तब होती जब उन्हें ख़ुश रखने की उसकी इस कोशिश पर भी उसे बाबू जी से सुनने को मिलता – ''बस, मेरे मुंह से कुछ भी निकला और तू उसे तुरंत पूरा करने को भागता है, क्यों शर्मिंदा करता रहता है, मुझे इस तरह? मुझे तो तुझसे कुछ कहते भी संकोच होता है.'' वह चुप होकर रह जाता.

बाबू जी के रिटायरमेंट से तीन साल पहले ही उसे नौकरी मिल गयी थी और उसे इस शहर में आना पड़ा था. नौकरी लगने के एक साल बाद ही उसकी शादी हो गयी थी और फिर अगले साल ही वह जुड़वां बच्चों का बाप बन गया था. अम्मा-बाबूजी की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था. नौकरी की व्यस्तता के कारण बाबूजी तो उसके पास कम आ पाते थे, पर अम्मा का जब भी मन करता अपने पोते-पोती से मिलने चली आतीं.

अब तो बाबूजी को रिटायर हुए भी ग्यारह साल हो चुके हैं. जब वे रिटायर हुए थे तो उसने कितना आग्रह किया था कि वे सब साथ रहें, पर वे नहीं माने थे. अम्मा की इच्छा को नज़रअंदाज करते हुए उन्होंने गांव के अपने पुश्तैनी मकान को ठीक-ठाक करा लिया था और वहीं रहने चले गये थे. उसने अम्मा से पूछा भी था कि इस उम्र में उन्हें अलग रहने की क्या ज़रूरत है तो उन्होंने संकोच के साथ कहा था – ''तेरे बाबूजी को किसी पर बोझ बन कर रहना पसंद नहीं है. वे कहते हैं, विशु को अपने परिवार के साथ आज़ादी से रहने दो. गांव में अपना मकान है, भगवान की दया से पेंशन भी है, फिर हम किसी को क्यों परेशान करें.''

वह सन्न रह गया था – ''क्या कह रही हो अम्मा? क्या मैं 'किसी' की श्रेणी में आता हूं? बेटा हूं मैं उनका. उन्होंने ऐसा सोचा भी क्यों? सच बताना क्या कभी अनजाने में भी मैंने उन्हें ऐसा अहसास कराया है?''

अम्मा चुप हो गयी थीं. फिर उन्होंने कहा था – ''उनके दोस्तों-रिश्तेदारों के अनुभव हैं, जिनकी वजह से शायद उनकी यह सोच बनी हो. पर, तू इस बात को दिल से मत लगा. तुझे वे बहुत प्यार करते हैं. फिर, कितने दिन वे तुम सबसे दूर रह पायेंगे. हमेशा ही तो तुम्हारी और बच्चों की बातें किया करते हैं. समय गुज़रने दे सब ठीक हो जायेगा.''

समय तो ज़रूर गुज़रा, लेकिन ठीक कुछ भी नहीं हुआ. उसकी मां बिना कोई नोटिस दिये अचानक गुज़र गयीं. उन सबके लिए यह एक बहुत बड़ा धक्का था. बाबू जी को भी इतना हैरान-परेशान उसने कभी नहीं देखा था. गांव में उन्हें अकेला छोड़ने का सवाल ही नहीं था. इस बार उन्होंने भी कोई विरोध नहीं किया था और वे चुपचाप उसके साथ चले आये थे.

वे आ तो गये थे, पर बिलकुल अलग-थलग से रहते. अकसर कमरा बंद करके पड़े रहते. वह अपने काम के सिलसिले में सुबह ही घर से निकल जाता और घना अंधेरा पसर जाने के बाद थका–हारा घर लौटता. आते ही वह बाबूजी के कमरे में जाता. बाबूजी बस इतना ही कहते – ''आ गया तू.'' और उठ कर बैठ जाते. वह उनसे पूछता

– ''आपकी तबीयत तो ठीक है न, बाबूजी...'' उसे उत्तर मिलता – ''मेरी तबीयत को क्या हुआ है. बस पड़ा हुआ हूं. कट जायेगी ऐसे ही बाक़ी बची ज़िंदगी.''

वह बाबूजी के अकेलेपन को समझता था. मां को बहुत मिस करते होंगे. मां की याद तो उसे भी बहुत आती थी, पर उसे लगता अगर वह उनके सामने मां का ज़िक्र करेगा तो वे और भी परेशान हो जायेंगे. इसलिए चुप होकर रह जाता.

छुट्टी के दिन वह उनके साथ कुछ समय गुज़ारना चाहता, पर बाबूजी 'हां', 'हूं' में ही जवाब देते और उसे उनके पास से उठ कर चले आने के सिवाय और कोई चारा नहीं रहता. उसका मन करता बाबूजी अपने-आपको सिर्फ़ अपने कमरे तक ही सीमित न रखें, पूरे परिवार के साथ बैठें उठें ताकि उनका अकेलापन दूर हो सके और वे मां की यादों से भी दूर रह सकें. यह सोच कर वह पुराने ब्लैक-एंड-व्हाइट टीवी की जगह एक रंगीन टीवी ख़रीद लाया था. ड्राइंग रूम में रखा टीवी देखने भी वे कभी-कभार ही बाहर आते. ज़्यादातर उसकी बीबी और दोनों बच्चे ही टीवी से चिपके रहते.

उस दिन बाबूजी टीवी पर न्यूज़ देख रहे थे. तभी बच्चे अपना कोई कार्यक्रम देखने के लिए ज़िद करने लगे. उन्होंने टीवी का रिमोट बच्चों को थमाया और अंदर जाकर लेट गये. वह जब अपने काम से लौट कर आया तब उसकी बीबी से उसे यह सब मालूम हुआ. उसने तुरंत ही उनके पास पहुंच कर इस बात के लिए माफ़ी मांगी और उन्हें बाहर आकर टीवी देखने के लिए कहा. वे उसकी बात सुन कर बोले – ''कोई बात नहीं, बच्चे हैं. फिर जिनका टीवी है, उनका हक़ पहले बनता है.'' वह उनकी बात सुनकर सन्न रह गया था – ''क्या कह रहे हो बाबूजी, आप इस घर के सबसे बड़े हो. हर चीज़ पर पहला हक़ आपका है.'' बाबूजी ने कुछ नहीं कहा था और वह करवट बदल कर लेट गये थे. उनके इस व्यवहार से आहत-सा वह बाहर निकल आया था.

सुबह दफ़्तर जाने से पहले वह नाश्ता कर रहा था. वह उठने को ही था कि बाबूजी डाइनिंग टेबल के पास आये और उससे पूछने लगे – ''मैं एक केला ले लूं क्या?'' उसने हैरानी से उन्हें देखते हुए कहा था – ''इसमें पूछने की क्या बात है?'' बाबूजी ने बिना कुछ कहे टेबल पर रखे केलों के गुच्छे में से एक केला तोड़ लिया और उसे छीलते हुए अंदर चले गये.

एम. ए. अर्थशास्त्र, एम. कॉम, एलएल. बी., सीएआइआइबी, पीएच. डी. (कॉमर्स).

पिछले लगभग ४० वर्ष से लेखन कार्य से जुड़े, लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, व्यंग्य लेख, कविताएं, लेख प्रकाशित; दो कहानी संग्रह प्रकाशित – १. 'नया लिहाफ़', २. 'अचानक कुछ नहीं होता'; तीसरा कहानी संग्रह ''भीतर दबा सच'' प्रकाशनाधीन; विश्व की कई श्रेष्ठ कहानियों का हिंदी में अनुवाद; रेडियो पर नियमित रूप से कहानियों का प्रसारण; महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी प्रथम पुरस्कार; अखिल भारतीय स्तर पर कई कहानियां पुरस्कृत; बैंकिंग विषयों पर हिंदी में संदर्भ साहित्य सृजित करने के लिए महामहिम राष्ट्रपति जी के हाथों पुरस्कृत; बैंकिंग/अर्थशास्त्र/अभिप्रेरण और राजभाषा आदि विषयों पर बैंकों तथा सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी शिक्षण/प्रशिक्षण संस्थानों में व्याख्यान; जेजेटी विश्वविद्यालय, राजस्थान में पीएच. डी. (वाणिज्य) के गाइड/सुपरवाइज़र के रूप में पंजीकृत; भारतीय रिज़र्व बैंक से ज़नरल मैनज़र के रूप में सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन.

उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह या उसका परिवार ऐसा क्या कर रहा था जिससे बाबूजी उनके साथ घुलमिल नहीं पा रहे थे. उसकी पत्नी तो अभी भी उनके सामने घूंघट निकालती थी और उनसे बोलती भी नहीं थी. दोनों बच्चे भी उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे और वह तो उनकी तमाम ज़रूरतों का अंदाज़ा लगा कर उनके कहने से भी पहले उन्हें पूरा करने की कोशिश करता था. क्या करे वह जिससे बाबूजी उनके साथ सहज हो जायें.

उस दिन उसकी छुट्टी थी. वह बाल्कनी में बैठा अख़बार पढ़ रहा था. तभी बाबूजी नहाने के बाद अपने कपड़े सुखाने के लिए बाल्कनी में आये. उसने कहा –

''लाओ, बाबूजी मैं सुखा देता हूं.'' पर, उन्होंने इनकार में सिर हिलाते हुए अपने कपड़े ख़ुद ही अलगनी पर फैला दिये. उसने देखा सूखने के लिए फैलाई बनियान में कई जगह छेद हो रहे थे. उससे रहा नहीं गया और वह उनसे पूछ बैठा – ''ये फटी हुई बनियान पहनते हो आप?'' उनका संक्षिप्त उत्तर था – ''मेरे पास यही है?'' उनका यह उत्तर उसे क्रोधित कर गया था – ''बाबूजी आप मुझे बताओगे नहीं तो मुझे कैसे पता चलेगा? अगर आप फटी बनियान पहनोगे तो मेरा इतनी मेहनत से कमाने का फ़ायदा क्या? मुझे अपनी ज़रूरतें बता तो दिया करो.''

बाबूजी ने बिना उसकी ओर देखे हुए कहा था - ''चल, अब तो तुझे पता चल गया है, ला देना.'' वह थोड़ी ही देर में बाज़ार जाकर उनके लिए दो नयी बनियानें ख़रीद लाया था. जब वह उन्हें देने गया तो उन्होंने कहा था – ''इतनी भी क्या जल्दी थी. क्या आज ही मुझे नयी बनियान पहन कर कहीं जाना था.'

पता नहीं क्यों वह अपने ग़ुस्से को दबा नहीं पाया था – ''बाबूजी आप क्यों कर रहे हो मेरे साथ ऐसा? मैं तो आपको ख़ुश देखना चाहता हूं. आप मुझे पराएपन का अहसास क्यों कराते हो?''

वे भी शायद पहली बार ऊंची आवाज़ में बोले थे – ''मैं तो बहुत अहसानमंद हूं तेरा. चाहता हूं ईश्वर तुम सबको जल्दी से जल्दी इस कर्तव्य-बंधन से मुक्त कर दे और तुम निश्चिंत रह सको.''

उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ था. अपने बेटे के बारे में वे ऐसा सोच भी कैसे सकते हैं और क्यों? बात और न बढ़े, यह सोच कर वह वहां से चुपचाप निकल आया था. ऐसे समय उसे मां की बहुत याद आयी थी. काश, आज मां होती तो वह सब कुछ संभाल लेती या फिर इस स्थिति की नौबत ही नहीं आती.

उस दिन के बाद उनके बीच एक अजीब सी दूरी आ गयी थी. पहले ही उनके बीच बात बहुत कम होती थी, अब तो सिर्फ़ एक-दो वाक्यों तक ही सीमित होकर रह गयी थी. उसे लगता था, वह हार गया है. कई बार उसका मन करता, बाबूजी उससे उसका हाल पूछें, उसके सिर पर प्यार से अपना हाथ फिरायें और वह उस वात्सल्य रस में डूब सके जिसके लिए वह मां के जाने के बाद तरस कर रह गया था. उसे इन दिनों मां की याद पहले से भी ज़्यादा सताने लगी थी.

दफ़्तर से आने के बाद वह खाना खाकर टीवी देखने बैठ जाता. यही वह समय होता जब बाबूजी भी अपने कमरे से निकल आते और सोफ़े से कुछ दूर हट कर रखी आराम कुर्सी पर आकर बैठ जाते. टीवी पर जो भी कुछ चल रहा होता, वे उसे लगभग ख़ामोशी से देखते रहते. वो ही कभी-कभी उनसे बात करने की कोशिश करता. ज़्यादातर वे हां या ना में जवाब देते और कुछ देर बाद उठ कर अपने कमरे में चले जाते. संवादहीनता की यह स्थिति उसे असहज बनाये रखती और वह अंदर ही अंदर कहीं दरकने लगता.

दफ़्तर से आने में उसे कुछ देर हो गयी थी. दोनों बच्चे सोने जा चुके थे. आशा के विपरीत बाबूजी अब तक जाग रहे थे और हमेशा की तरह आराम कुर्सी पर ख़ामोश बैठे हुए थे. खाना खाने के बाद वह टीवी खोल कर बैठ गया. उसने ख़ामोशी तोड़ने के इरादे से पूछा – ''बाबूजी, आपके लिए न्यूज़ लगा दूं?'' उन्होंने वही संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था – ''नहीं, मन नहीं है. तू कुछ भी लगा ले.''

वह यूं ही चैनल पलटने लगा. एक प्रोग्राम ने उसका ध्यान खींचा तो वह उस पर रुक गया. बच्चों की गायन प्रतियोगिता का प्रोग्राम था. सभी बच्चे 'मां' विषय पर गाना गा रहे थे. उन सभी की मम्मियां भी वहां मौज़ूद थीं. हर गाना लोगों को आंदोलित कर रहा था. तभी एक ऐसा बच्चा गाने आया जिसकी मां नहीं थी. उसने गाना भी ऐसा चुना था कि प्रतियोगिता के जजों सहित सभी की आंखें नम हो आयी थीं. पता नहीं कब वह स्वयं को उस बच्चे की जगह रख कर देखने लगा था. उसे अपनी मां बेतरह याद आने लगी थी. बेख़बरी में उसकी आंखों से आंसू बहने लगे थे. बाबूजी के सामने मां का ज़िक्र न करने की अपनी क़सम उसे याद नहीं रही थी. गाना ख़त्म होते न होते उसके भीतर का सैलाब फट कर बाहर आ गया और वह ''अम्मा कहां हो

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

दो लघुकथाएं

इति श्रवण कथा

✍ योगेंद्र शर्मा

एक बेटा, एक बेटी, पक्की नौकरी, ख़ुशहाल गृहस्थी, वह स्वयं को भाग्यवान समझते थे. भूल यह हुई कि बेटे को लाड़-प्यार ज़्यादा ही हो गया. उसे अंग्रेज़ी मीडियम में, बेटी को हिंदी मीडियम में पढ़ाया. बेटे को आठवीं से बी. ए. तक पहुंचने में सोलह वर्ष लग गये. बिटिया तब तक बी. ए. करके अपने घर की हो गयी. अधिक लाड़ के कारण बेटा शराबी, कबाबी, जुआरी और न जाने क्या-क्या हो गया. मां शराब के पैसे नहीं देती तो उसे मार बैठता. एक दिन बाप ने देख लिया और घर से निकाल दिया.

बेघर होकर, वह एक विधवा रूपा के संपर्क में आया. वह एक परचून की दुकान चलाती थी. दोनों विवाह बंधन में बंध गये. रूपा ने उसे सीख दी, कि वह बाप का इकलौता बेटा है, उसे अपना हक़ नहीं छोड़ना चाहिए.

एक दिन बेटे ने साले और ससुर के साथ बैठकर शराब पी और मां-बाप पर अपने हक़ के लिए, हल्ला बोल दिया. दोनों की पिटाई हो गयी. मां तो मां थी, परंतु पिता ने अंगद-सा पैर रोप दिया. सारी ज़ायदाद बेटी के नाम कर दी, वसीयत कर दी कि उसकी अंत्येष्टि भी पुत्री ही करेगी.

आम-आदमी

शहर आज पोस्टरों, बैनरों, झंडियों से अटा पड़ा था. चौक वाले चौराहे पर फटा पज़ामा, चीकट बनियान, रूखे बाल, सफ़ेद दाढ़ी, कपड़े के बैनरों को ललचायी दृष्टि से देख रहा था.

उसके बायीं ओर अधिकांश बुद्धिजीवियों का जमावड़ा था, थोड़े बहुत दायीं ओर भी थे.

परंतु यह फटेहाल आदमी, सारी गहमागहमी से बेख़बर, न दायीं ओर देख रहा था, न बायीं ओर. उसे प्रतीक्षा थी कि कब यह मेला उठे, कब बैनरों की लूट हो, और वह दो बैनर लूट ले जाये, एक ओढ़ने को, एक बिछाने को.

✆ ३/२९ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग, रामघाट रोड, अलीगढ़, मो. ९८९७४१०३२०

तुम'' कह कर जोर-जोर से हिचकियां भर कर रोने लगा.

उसके अचानक इस तरह बिलख पड़ने से बाबूजी कुछ क्षण हतप्रभ से बैठे रहे, फिर अपनी कुर्सी से उठे और उसके सिर पर अपना हाथ फिराते हुए उसे चुप कराने लगे. बाबूजी के स्पर्श से उसकी रुलाई और भी ज़ोर से फूट पड़ी. बाबूजी उससे पूछ रहे थे – ''तुझे अम्मा की याद आती है विशु? मैं तो समझता था तू उन्हें बिलकुल भूल गया है, एक बार भी तो तूने कभी उसका ज़िक्र नहीं किया.''

वह हिचकियों के बीच ही बोला था – ''मैं अम्मा को कैसे भूल सकता हूं, बाबूजी. उनकी यादों से आप परेशान न हों, बस इसीलिए मैं आपके सामने उनका ज़िक्र करने से बचता रहता हूं.''

''उफ़, और मैं क्या सोच रहा था. जिसे जन्म देने वाली मां का कभी ख़्याल नहीं आता, वह मेरा क्या ख़्याल रखेगा. सोचता था कितना बड़ा कलाकार है तू जो मेरा ख़्याल रखने का इतना अच्छा दिखावा कर रहा है. हे ईश्वर! तू मुझे कभी माफ़ मत करना.''

बाबूजी उसे अपनी छाती से लगा कर उसके आंसू पोंछे जा रहे थे, पर उनकी ख़ुद की आंखों से जो पानी बह रहा था, उसका उन्हें भान नहीं था.

✆ ४०२, श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई- ४०००८९
मो. - ९८३३४४३२७४
ईमेल- rks.mun@gmail.com

पानी की प्यास

डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

सौंती चल रही है या दौड़ रही है? सिर पर माटी की गगरी. आकाश से बरसती आग. धूप तो ऐसी जैसे वो त्रिलोचन के नैन हों. धरती पर सब कुछ स्वाहा करके रख देगी. सौंती को जल्द से जल्द एक गगरी पानी ले आना है. घर में एक बूंद पीने का पानी नहीं है. उधर भागी बिस्तर पर लेटे-लेटे कराह रही है. उसका गला सूख रहा होगा. वह बुदबुदा कर कहती जा रही थी, 'पानी... ओह!... प्यास.... पानी...!'

मगर उसकी ऐसी हालत में भी रामरती के मन को थोड़ी सी संवेदना भी छू नहीं गयी. एक जगह बैठे–बैठे वह बुढ़िया बक-बक करती जा रही थी, 'अरे तुरंत पानी नहीं मिलेगा तो यह मर नहीं जायेगी. इतनी ही प्यास है, तो ख़ुद जाकर कुएं से पानी भर कर लाती क्यों नहीं?

सौंती को उसकी बात बिलकुल अच्छी नहीं लगी. बात करने का उसका ढंग ही ऐसा है. ख़ुद को गृहस्थी की पटरानी समझती है? रामरती, भागी और सौंती — तीनों सौतें हैं. महाराष्ट्र के देनगानमल गांव के सखाराम भगत की बीवी हैं सब. इक्कीसवीं सदी के चौदह साल बीत जाने के बाद भी महाराष्ट्र के जिन उन्नीस हज़ार गांवों में पानी के लिए त्राहि–त्राहि मची रहती है, उनमें से ठाणे जिले के शाहपुर तालुके का देनगानमल भी एक है. राजधानी मुंबई से बस छियासी किमी दूर.

मुश्किल से सौ से अधिक परिवारों का यह गांव देनगानमल जल के लिए एक अजीब श्राप से अभिशापित है.

उन दिनों आषाढ़ की हल्की बूंदाबांदी हो चुकी थी. सारे किसान बादलों के लिए टकटकी बांधे आसमान की ओर देख रहे थे. मगर पानी का कहीं नामो निशान भी नहीं था. बल्कि उमस से सारे जीव व्याकुल हो उठे थे. ऐसे में सदाशिव अमरापुरकर के खेत में मज़दूरी करके सखाराम घर लौटा था. घर के आंगन में पैर धरते ही पसीना पोंछते हुए उसने आवाज़ लगायी, 'अरी ओ रामरती, पहले एक लोटा पानी पिला दे तो.'

मगर उस तपती दोपहर में रामरती लेटी ही रही. न उठी, न पति के बुलाने पर उसने कुछ कहा. उसके बेटे को सुबह से बुख़ार चढ़ा था. इसलिए वह कुएं से पानी भरने जा भी नहीं सकी थी. बच्चा रोये जा रहा था. उसका मन खीझ से भर उठा था. मन ही मन वह बार–बार अपने बापू को कोसती, 'अण्णा, यह किस नरक में तुमने मेरा ब्याह कर दिया कि जहां आदमी एक बूंद पानी के लिए भी तरस जाये?'

गांव से क़रीब दो कोस की दूरी पर पहाड़ की चट्टानों के बीच दो कुएं हैं. पानी पीना है तो जाओ — वहां तक पैदल, सिर पर तीन चार गगरियों को ढोते हुए. पथरीली राह पर चलकर वहां तक पहुंचो. अगर पहले से और कोई खड़ा है तो अपनी पारी का इंतज़ार करते रहो. फिर पानी भर कर उतना पैदल लौटो. पानी भरी हुई गगरियों को सर पर उठाकर संभालते हुए. तब तो तुम अपने बच्चों को पानी पिला सकती हो, अपने आदमी को पानी पिला सकती हो. ख़ुद अपनी प्यास मिटा सकती हो.

झुंझलाते हुए सखाराम ने दो एक बार और आवाज़ लगायी, 'अरे रामरती, कहां मर गयी?' बाहर की उमस और तपन ने उसके मन में भी आग लगा रक्खी थी. और यह किसको अच्छा लगेगा कि जिस गृहस्थी को खिलाने-पिलाने के लिए वह दिन भर जांगर रगड़ कर आया है, वहीं उसकी बीवी उसके लिए एक लोटा पानी भी नहीं ला सकती?

उसकी प्यास ने उसके मन में अंधड़ मचा दिया. वह दौड़ कर कमरे के अंदर पहुंचा और एक हाथ से रामरती का

झोंटा पकड़ लिया. फिर तो उसके मुंह से बिलकुल बवंडर की तरह गालियां चलने लगीं.

रामरती भी किसी कुरेदी गयी नागिन की तरह फन उठाकर फुंफकारने लगी, 'मैं तेरी बीवी हूं, बांदी नहीं. मेरा बेटा बुख़ार से तड़प रहा है, तुझे उसका ज़रा भी ख़्याल है? मेरे बच्चे के होंठ सूख रहे हैं. मैं मां होकर उसे एक बूंद पानी पिला न सकी, तो तेरे अण्णा और आई के लिए कहां से पानी लाऊं? बच्चे को किसके भरोसे छोड़ कर जाती मैं?'

हुक्के के दहकते अंगारे की तरह सखाराम गुमसुम बैठा रहा. सांझ ढलने पर भी रामरती न उठी, न चूल्हे की लकड़ी जलायी. वह बेटे को लेकर बैठी ही रही.

आख़िर हारकर सखाराम की आई को ही उठना पड़ा, 'यह भी कैसा ग़ुस्सा है? देवा हो देवा! हम भी तो बांझ नहीं थीं. मेरे बेटे भी बीमार पड़े. तो क्या मैंने चूल्हे में आग देना भी बंद कर दिया? पति, ससुर और सास के लिए पानी लाना ही बंद कर दिया था? हाय रे गनेशा! यह ज़माना ही कैसा आ गया है! अब तू भी देखती जा मैं क्या करती हूं. मैं सखा के लिए दूसरी जोरू ले आऊंगी.'

देनगानमल गांव के लिए यह कोई अनहोनी बात भी न थी. सिर्फ़ दूर के कुएं से पानी लाने के लिए ही दूसरी या तीसरी शादी रचाना यहां कोई अनोखी बात नहीं है. समाज ने तो इसी रीति को स्वीकार ही कर लिया है. भले ही हिंदू विवाह क़ानून कुछ और ही राग अलापे.

शाम को इसी बात को नीलू फुले ने भी दोहराया, 'अरे सोच क्या रहा है? रामचंदर बन के इस गांव में तो रह नहीं सकता. एक सीता से तो पूरी गृहस्थी प्यासी रह जायेगी. तो रामचंदर नहीं, बल्कि उसका बाप दशरथ बन जा रे! ले आ कौशल्या के बाद कैकेयी को.'

दोपहर की तपन ख़त्म होते-होते छाती की प्यास और दिमाग़ की आग दोनों को बुझाने सखाराम बाटली के ठेके में जा पहुंचा था. वहीं पर राम राम के बाद जब हालचाल पूछा जा रहा था, तो ये सारी बातें भी होने लगीं. और तभी नीलू ने दी नेक सलाह, और वहां बैठे कई भाई अपना सर हिलाते रहे, 'कासी में जब जीना मरना, ठग या देवल बनकर रहना!'

बात ज़ोर पकड़ती गयी. अब यह कहना तो मुश्किल है कि लड़के ने लड़की को तलाश किया या कन्या ने बन्ने को. जैसे कढ़ाई में सब्ज़ी तलते समय यह कहना नामुमकिन है कि तरकारी के किस टुकड़े का रंग सबसे पहले हरे या पीले से भूरा हो गया.

१८ जनवरी, १९५५; जलालपुर, बिहार.
एम.बी.बी.एस. (बी.एच.यू.)
: लेखन :
हिन्दी एवं बांग्लापत्र पत्रिकाओं में बच्चों एवं बड़ों की कहानियां, कविताएं, नाटक तथा आलेख प्रकाशित.
: प्रकाशन :
पुस्तकें : १.गणित के पंख (बाल-उपन्यास. सीबीटी द्वारा पुरस्कृत व प्रकाशित. २. सातसमुद्र (बांग्ला)
एन.बी.टी. द्वारा 'सातसमुंदर' बाल-उपन्यास किस्तवार प्रकाशित, सी.बी.टी. के संकलन में एवं सी.बी.एस.ई. पाठ्य पुस्तक में कहानियां संकलित.
: पुरस्कार :
सी.बी.टी., राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव, प्राची पत्रिका द्वारा कहानियां पुरस्कृत. बांग्ल पत्रिकाओं द्वारा
आयोजित प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत. कथाबिंब द्वारा 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१३.'
अनूदित : अंग्रेज़ी, ओड़िया, मराठी एवं गुजराती में.
संप्रति : निजी चिकित्सक

भागी सखाराम की ममेरी दीदी की ननद है. उसकी शादी तो एक अच्छे भले किसान के घर हुई थी. मगर उसके पति ने कपास की खेती के लिए महाजन से रुपये उधार क्या लिये, उस साल फ़सल बर्बाद हो गयी, और साथ ही साथ किसान भी. आख़िर हार कर भागी के पति ने रस्सी का ही सहारा ले लिया. मुआवज़ा की रक़म जो मिली, उसे लेकर महाजन और भागी के जेठ और देवर में छीना-झपटी मच गयी. इसी चक्कर में उस अभागिन ने पाया कि वह तो छिटक कर घर से बाहर सड़क पर जा गिरी है. तो आख़िर उसे अपने मायके के दरवाज़े ही खटखटाने पड़े... भाई ने तो मुंह बनाकर ही सही किवाड़ खोल दिया, मगर भाभी मन

ही मन कुढ़ कर रह गयी. सोचने लगी — एक थाली भात, कहां से खायें आदमी सात?

अंततः इधर जब मौक़ा मिला तो भागी की भाभी यानी सखाराम की ममेरी दीदी ने उसकी आई से कहा, 'बुआ, मेरी ननद को ही क्यों नहीं घर ले आ रही हो ?'

सखाराम की आई ख़ुद एक औरत थी. अपनी भतीजी के मन की बात वह भली भांति ताड़ गयी कि वह अपनी ननद से छुट्टी पाना चाहती है. फिर सोचने लगी — हर्ज़ ही क्या है? दूसरी तीसरी जलपत्नी के रूप में किसी विधवा, या कोई अभागन जो अपने एकाध बच्चे के साथ अकेली रहती है, उसे ब्याह कर लाना — यही तो रिवाज़ है.

सारा तमाशा होता रहा, रामरती चुपचाप देखती रही. कसाई बाड़े का हर मेमना जानता है कि आज या कल उसकी बारी आनेवाली है. देनगानमल की पत्नियां भी जानती हैं कि उनकी तकदीर में भी कोई और अनोखी बात लिखी नहीं है. ख़ैर, उसके बेटे सचिन का बुख़ार उतर चुका था. दरवाज़े पर बाजा-नगाड़ा बजने लगा. सचिन भी मां के गले लिपटकर उछलने लगा, 'आई, मैं भी अण्णा की बारात में चलूंगा.'

'चल मुए!' रामरती ने उसकी पीठ पर एक मुक्का जमा दिया, 'बाप है मांड़ और बेटा बने भांड़!'

सचिन की शहनाई बजने लगी — 'ऐं ऐं - मैं भी चलूंगा.' और आख़िर वह भी गया.

बाप–बेटे लौटे तो साथ में भागी भी थी. छाती तक घूंघट के नीचे, नाक में नयी नथनी. पैरों में चांदी के कड़े.

यहां तक पहुंचते-पहुंचते सचिन भी भागी के साथ घुल मिल गया था, 'ए नई की आई, हमारे घर चलकर रहोगी तो अपनी आई, अपने भाई की याद नहीं आवेगी?'

इस सीधे–सादे सवाल का जवाब क्या था भागी के पास? मुस्कुराकर रह गयी. इसी तरह रास्ते भर और भी जाने कितनी बकबक, 'मेरे दोस्त पंजारी का निशाना क्या गज़ब का है! एक बार एक ढेले से उसने दो-दो आम एक साथ गिरा दिये.'

फिर थोड़ी देर चुप्पी के बाद, 'संजीबा के घर का तोता 'राम राम' तो कहता है, मगर कितनी गाली बकता है! बाप रे बाप! सब संजीबा की दादी से सीखा है. वह जो दिनभर संजीबा की आई को गाली बकती रहती है.'

कहने के लिए तो देनगानमल की सपत्नियां सगी बहनों की तरह रहती हैं. मगर हर एक का कमरा और चौका बर्तन अलग ही होता है. ऐसा नहीं कि संयुक्त परिवार की तरह सब एक ही जगह खाना खाते हैं. तो सखाराम के आंगन में भी और एक कमरा बन गया. सखाराम दो एक रात वहीं खाना खाता, वहीं सोता. इससे तो रामरती के मन में और भी घृताहुति होने लगी. जिस तरह छुरी चाकू पर सान देने के लिए कुरंड पत्थर पर उन्हें रगड़ने से उनकी कुंद धार तेज़ हो जाती है, उसी तरह अपनी क़िस्मत से रगड़ खा खाकर रामरती के मुंह के शब्द भी तीर बनते चले गये.

शादी के दूसरे दिन ही सुबह सखाराम भागी को जगाने लगा,'ऐ उठ. चल, तुझे आज कुआं दिखा लाते हैं.'

एक तो नयी जगह, ऊपर से दो दिन का कर्मकांड, फिर बीती रात का अहसास — भागी तो मुश्किल से आंख खोल पा रही थी. फिर वह उठ गयी और मुंह-हाथ धो कर तैयार होने लगी. ऐसे तो देनगानमल में औरतें ऊपर लंबा ब्लॉउज़ और नीचे छोटा घांघरा जैसा कपड़ा पहन कर बाहर निकलती हैं, मगर आज वह साड़ी में ही लिपटी हुई थी. बस सिर के ऊपर उसने मज़बूती से एक पगड़ी बांध रक्खी थी. और उस पर दो बड़े और एक छोटे घड़े रख लिये. फिर कमर पर एक.

सखाराम नयी दुल्हन को लेकर निकल ही पड़ा था कि सचिन भी आंख मलते हुए रामरती के कमरे से बाहर आंगन में आ गया, 'ए आई, मैं भी नयी आई के साथ कुएं पर चलूंगा ...'

'तू जाकर क्या करेगा? चुप मारकर लेटा रह.' रामरती झुंझला उठी — देवा हो देवा! इस डायन ने जाने कौन–सा मंतर फूंक दिया है मेरे लाल पर!

'नहीं. मैं भी चलूंगा.' वह अपना पैर पटकने लगा, 'अण्णा...'

'चलने दो न दीदी. मेरा भी मन बहल जायेगा.' भागी ने कहा तो रामरती झट से मुड़ कर अंदर चली गयी.

सखाराम ने बेटे का हाथ थाम लिया. रास्ते भर सचिन कभी बापू के पास रहता, तो कभी भाग कर भागी के पास चला जाता, 'नयी आई, कबूतर तो सफ़ेद और भूरे दोनों होते हैं, मगर कौवा सिर्फ़ काला ही क्यों होता है?'

गीता के प्रश्नों का उत्तर शायद विद्वानों के पास हो, मगर इस बालगोपाल के सवालों का जवाब भागी बेचारी कहां तक देती? भले ही घड़े खाली हों, मगर सर पर बोझ तो था ही. उन्हें संभालना भी था. साथ ही लौटते समय सर

पर के वज़न की कल्पना से भी तो रूह कांप रही थी. हे सांईनाथ, घर का एक कोना पाने के लिए सारी ज़िंदगी यह क़ीमत चुकानी पड़ेगी?'

छोटे–छोटे पत्थर और कंकड़ों से भरे क़रीब ढाई तीन किमी. रास्ता चलकर वे तीनों गांव के कुएं तक पहुंचे. इधर-उधर दो एक बबूल और जंगली नींबू के पेड़ वहां चुपचाप खड़े थे. कुएं के पास. दोनों पेड़ उदास — किस दिन मिटेगी बोलो इंसानों की प्यास ?

कुएं की दीवार पर टूटी–फूटी नंगी ईंटें झांक रही थीं. सखाराम कुएं की रस्सी से लगी बाल्टी को नीचे उतारने लगा. भागी ने ऊपर से कुएं के अंदर झांक कर देखा — वहां नीचे पानी के ऊपर जलकुंभी के पौधे तैर रहे थे. दो एक बार बाल्टी को पानी के अंदर–बाहर करके उनको थोड़ा हटाना पड़ा. फिर भर लो पानी .....

एक-एक करके चारों घड़े भर लिये गये. सखाराम ने एक बार पूछा, 'एक मैं ले लूं?'

भागी ने सर हिलाया, 'रहने दो.'

हां, अपने स्वार्थ के लिए इंसानों ने धरती को भी तो नारी मान लिया है. तो बोझ तो भागी और धरती दोनों को ही ढोना है.

बस यही सिलसिला शुरू हुआ. तीन-तीन, चार-चार घड़े में पानी भर कर इतना दूर लाना. दिन में दो बार, तो कभी–कभी तीन बार.

सखाराम के घर के हरे रंग के दरवाज़े के दोनों ओर रंगोली की तरह कुछ उकेरी हुई थीं, और एक तरफ़ दीवार पर बनी थी मछली. रामरती के कमरे की दीवार पर बीचो-बीच पति-पत्नी की फ़ोटो टंगी हुई है. शादी के बाद संत तुकाराम जयंती की यात्रा के मेले में दोनों ने खिंचवायी थी. फ़ोटो के दायें ब्रह्मा, विष्णु और महेश विराजमान हैं और उनके नीचे संत तुकाराम. बायें नीले रंग का फाग उड़ाते हुए डॉ. अंबेडकर.

दो घड़े पानी उस कमरे में रखकर भागी ने अपने हिस्से का एक घड़ा पानी अपने कमरे में एक बर्तन में उंडेल दिया. वैसे तो सिवाय सामाजिक सुरक्षा के जलपत्नियों को विवाह का और कोई सुख मिलता नहीं. फिर भी साल डेढ़ साल बाद भागी को एक लड़की हुई. स्वाभाविक है, रामरती को सिर पीट लेने का एक मौक़ा मिल गया, 'अरे अब इसे कौन पार लगायेगा? इसका मामा?'

भागी चुप रही. उसने ख़ुद को ज़िंदगी की लहरों के हाथों सौंप दिया था. चाहे डूब जाये, चाहे उबर जाये.

मगर सचिन को तो जैसे एक खिलौना मिल गया. वैसे भी उसे नयी की आई से शुरू से ही लगाव था. अब तो वह दिन भर उसी के यहां उठता, बैठता और सोता. यद्यपि रामरती जल-भुन कर रह जाती, 'अरे इस चुड़ैल ने तो जैसे मेरे बेटे पर जादू-टोना कर दिया है रे!' मगर मन ही मन ख़ुश भी होती रही. रात में भागी के पास सचिन के सोने से सखाराम को तो उसी के कमरे में लेटना है. तो उसके हिस्से के अमृत में ज़रा भी टोटा नहीं होता.

सचिन और टुकी — दोनों भाई बहन सावन–भादों के धान की तरह बड़े होते गये. सचिन स्कूल भी जाने लगा था. मगर मा'ट्सा'ब के हाथों उसे नंबर से ज़्यादा बेंत मिला करते थे. फिर भी इस हो-हल्ले और ऊधम के बीच उसे कहीं अगर कच्चा आम या एक पका हुआ अमरूद दिख जाये, तो वह ढेला उठाकर निशाना लगाता और उसे उठाकर मुंह लगाये बिना तुरंत घर की ओर दौड़ता, 'टुकी - ई! नयी अम्मां, टुकी कहां है? यह ले, थाम...!'

उसी साल भादों शुक्ल चतुर्थी के गणेश जन्मोत्सव के ठीक एक दिन पहले ख़बर आयी कि सखाराम का वो जीजा यानी ममेरी दीदी का पति बहुत बीमार है. वो अपनी बहन को एक बार देखना चाहता है. अब इस बात में कितनी सच्चाई है यह तो स्वयं विघ्नेश गणेशा ही जाने, पर सखाराम की दीदी ने कुछ ऐसा ही कहकर उसे बुला भेजा. सखाराम भारी असमंजस में पड़ गया. खाना तो रामरती पका लेगी. मगर पानी ? ख़ैर, मां बेटे मिलकर कुछ संभाल लेंगे. यही सोचकर उसने भागी को भाई के पास भेज दिया.

भागी शादी के बाद पहली बार मायके पहुंची .....

'अरे अब क्या देखने आयी है?' सखाराम की दीदी राम के बिछोह में तड़पते भरत की तरह ननद से लिपट कर रोने लगी. मानो भागी को देखे बिना उसके गले से पानी अब तक नीचे उतर नहीं रहा था, 'देख, खटिया पर लेटे-लेटे कैसी दुर्दशा हो गयी है!'

भागी यहां भी बीमार की तीमारदारी और घर का सारा काम-काज संभालने लगी. सखाराम की बहन बीच–बीच में बेबस भगवान को कोसती, रोती और सोती रहती. उसकी गृहस्थी चलती रही.

उधर सखाराम की गृहस्थी में फिर वही रोज़ की किचकिच, रोज़ का तूफ़ान. अब तो सखाराम की आई रही नहीं, तो उसी को निर्णय लेना था. फिर से बाटली की ठेक पर नीलू फुले ने उसके पैसे से दारू पिया और नेक सलाह दे डाली, 'कैकेयी के बाद सुमित्रा का आना तो शास्तर में ही लिखा है.'

भागी घर पर थी नहीं. रामरती देखती रही. सुबह से

गाली देती रही. शाम तक सखाराम तीसरी बार दूल्हा बनकर निकल पड़ा. सचिन और टुकी दोनों बारात में शामिल हो गये. अण्णा की शादी की मिठाई भी तो खानी है. अगले दिन सौंती ने इस आंगन में क़दम धरा.

रामरती ने और चार औरतों के साथ मिलकर उसकी आरती उतारी. फिलहाल वह भागी के कमरे में ही रहने लगी. दूसरे दिन तड़के उसे सचिन के साथ पानी भर लाने के लिए भेज दिया गया.

इधर बीच भागी का भाई भी ज़िंदगी से लड़ते-लड़ते चल बसा. भागी को लौटना पड़ा. उसकी भाभी उससे लिपट कर रोयी और उससे कहा, 'जा भागी, अब यहां रह कर क्या करेगी? आख़िर एक दिन अपने घर तो तुझे लौट जाना ही था.'

अजीब खेल है जग का, लगा है आना-जाना, कौन किसका घर है यहां पर, कहां है ठिकाना ?

सौंती के बारे में भागी को तो पहले से सब कुछ पता चल ही गया था. वह आयी. सौंती की ठुड्डी पकड़ कर मुस्कुरायी और अगले दिन से फिर घड़े सिर पर लेकर कुएं तक जाने लगी. जब सौंती मां बनी तो भागी पानी लाने के साथ–साथ उसकी देखभाल भी करती. सौंती मन ही मन उसके प्रति अहसानमंद थी. अपनी सगी दीदी की तरह उसे प्यार करने लगी. वह अपने ढंग से भली भांति समझती थी कि भागी के भाग में उस कुएं की तरह सबकी प्यास बुझाते ही जाना है. भले ही उस कुएं की तरह वह भी अंदर से जर्जर होती जा रही थी.

देनगानमल में कभी सूखा पड़ा, तो कभी बारिश हुई. साल बीत रहे थे. सचिन को भी एक प्राइवेट बस में नौकरी मिल गयी. गांव में पानी की किल्लत होने के कारण कुछ मुश्किल से, पर उसकी शादी तय हो गयी. वह भागी से कहने लगा, 'बस नयी आई, अब देख लेना तुझे कुएं से पानी लाना नहीं पड़ेगा. तेरी बहू आयेगी तो उसी से सारा काम करवाना.'

भागी मुसकुराकर रह गयी. मगर उस कुएं की दीवार की ईंटों की तरह उसकी पसलियां भी दिखने लगी थीं. शादी के पहले दिन से कई दफ़े पानी लाने, फिर सबके लिए खाना बनाने में उसे ख़ुद की सुध ही न थी. सौंती उसके हाथ बंटाती रही. मगर रात में जब सभी ने भोजन कर लिया तो सौंती ने उससे कहा, 'चलो दीदी, तुम भी खा लो न .....'

भागी ने सर हिलाया, 'नहीं रे. मेरी तबियत ठीक नहीं लग रही है. बुख़ार भी है और मचली भी आ रही है. बस एक गिलास पानी पिला दे.'

सौंती ख़ुद खाकर सो गयी. रामरती की तेज आवाज़ से सुबह उसकी नींद खुल गयी, 'अरे बात क्या है ?आज घर में ब्याह है और महारानी अभी तक सो रही है? पानी कौन लायेगा?'

सौंती दौड़ कर भागी के कमरे में गयी तो देखा वह बेसुध पड़ी हुई है. खाली पेट ऐंठन होने के कारण उसे शायद उल्टी भी हुई थी. पड़े–पड़े वह कराह रही है, 'पानी...पानी...'

सौंती भाग कर उसके घड़े के पास गयी. मगर यह क्या? न किसी घड़े में, न किसी बाल्टी में कहीं एक बूंद पानी नहीं है.

उधर सखाराम के मामा, मामी, भाऊ और जो रिश्तेदार आये हुए थे, सभी चिल्ला रहे हैं, 'अरे भागी, तू ने पानी भर कर नहीं रक्खा?'

सचिन बाहर निकल आया, 'मैं पानी ले आता हूं.'

रामरती चिल्ला उठी, 'आज तेरी लगन है, और तू चला पानी लेने इतनी दूर? कहीं चोट-वोट लग जाये तो ? उससे अशुभ होता है.'

टुली उतावली हो रही थी, 'आई, मैं जाऊं?'

सौंती ने उसे रोका,'तू अपनी बड़की आई के पास रह. पहले मैं कुएं से पानी भर कर लाती हूं. फिर तू चलना.'

जब तक सौंती पानी लेकर वापस आने लगी सूरज भी मानो उसका इम्तहान लेने लगा था. टप टप ....उसकी पेशानी से पसीना चू रहा था.

घर पहुंचते ही घड़े को रखकर, उससे एक लोटे में पानी उड़ेल कर वह भागी के पास जा पहुंची.

कमरे के अंधकार से बाहर निकलकर भागी की आंखें मानो किसी उजाले की तलाश कर रही थीं. उसके मुंह से निरंतर एक ही शब्द निकल रहा था -' पानी....पानी....पानी.....'

'लो दीदी, पी लो पानी.' सौंती ने एक हाथ में पानी लेकर उसके मुंह को पोंछा फिर उसका सर उठाकर पानी पिलाने लगी. मगर भागी के होठों के कोने से वह पानी सिर्फ़ बाहर ज़मीन पर चूने लगा .....

भागी की प्यास कभी बुझ नहीं पायी.....

सी-२६/३५-४०, रामकटोरा.
वाराणसी-२२१००१.
मो. : ९४५५१६८३५९
ईमेल : osrc.vns@gmail.com

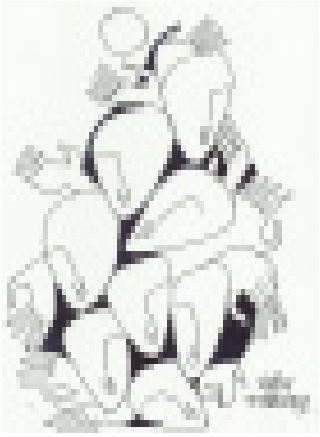

वाह, क्या कहने !

✍ माला वर्मा

आज घर में कुछ ज़्यादा ही काम निकल आया था. एक ख़त्म होता नहीं कि दूसरा काम दिख जाता. जितना बड़ा घर उतने ज़्यादा कमरे और उतना ही ज़्यादा साज संभाल. ये भी तो नहीं हो सकता कि दूसरे के माथे डालकर निश्चिंत हो जाऊं. देखना तो मुझे ही होगा. सच्ची, किसी गृहणी से पूछा जाये कि आज क्या-क्या काम किया तो खुद गृहणी नहीं बता सकती कि वो सुबह से शाम तक किस काम में बिज़ी थी. भले घड़ी की सुइयाँ चलते-चलते थक जायें लेकिन घर के काम शेष नहीं होने वाले. कभी-कभार तो दिल करता है अपनी घर-गृहस्थी से दूर कहीं ऐसी जगह चली जाऊं जहां किसी बात की चिंता-फ़िकर न हो... बस्स उन्मुक्त पक्षी की तरह आकाश में विचरती रहूं. ख़ैर, ये कभी संभव नहीं. सो. जो सामने है उसे देखते हुए आगे बढ़ें.

और हां, इस बीच शादी—ब्याह का सीज़न. अगले दस दिनों में चार-पांच शादियां तो अटेंड करनी ही हैं. घर में कई नयी साड़ियां पड़ी हैं. उनके साथ चूड़ियां भी रख दूं तो नेवते की तैयारी हो जायेगी. घर के सामने एक लेडीज़ फ़ैशन स्टोर है जहां सब चीज़ें मिलती हैं.

दूकान चूंकि क़रीब ही है सो तुरंत निकल गयी. वहां पहले से कुछ महिलाएं जमी थीं. उनका काम सलटे तो आगे बढ़ूं तब तक वहां खड़ी एक लड़की बोली — "एक सौ पैंसठ रुपया? ऐतना ज़्यादा कइसे हो गइल! हम डेढ़ सौ रुपया से तनिको बेसी ना देब..."

इस पर दूकानवाला बोला — "जौन हिसाब भइल बा ओतना त देबही के पड़ी. हम आपन नुकसान काहे करब! देखत नइखू सामने तख़्ती पर का लिखल बा 'एक दाम'. दहिजा दर मोलाई ना चले. तनी जल्दी कर हमरा अउरू ग्राहक के देखे के बा..."

"हम एक बार कह देनी, त कह देनी. डेढ़ सौ रूपया से ज़्यादा एक पइसा ना देब. तहरा लेवे के बा त ल, ना त आपन चूड़ी टिकुली धर. हम तोहार सामान ना लेब. तख़्ती पर एक दाम लिखला से का होला. हमहुं ज़ुबान के पक्का बानी. एक बार कहले के अंतिम बूझ. जल्दी कर... हमरा देरी होता." लड़की ने तेज़ी से कहा.

"आही... दादा! तू ब्रह्मा जी के बहिन हऊ का कि एक बार कह देलू त पत्थर पर लकीर हो गइल!"

"ना हो भइया! हम ब्रह्मा जी के बहिन ना हई पर एके शहर, एके मोहल्ला में रहला गुने तहार बहिन त होइये सकीला...! अब का कहत बाड़! डेढ़ सौ में चीज़वा देब कि ना...?"

दूकानदार ने अपने दोनों हाथ जोड़े और कह उठा — "हम हार गइनी बहिनी. डेढ़ सौ रुपया द अऊर हमार जान छोड़."

उन दोनों का वार्तालाप सुनकर मुझे बड़ा आनंद आ रहा था और चाह रही थी कि ख़ूब ठहाके लगाऊं लेकिन यह सोचकर चुप रह गयी कि ये दोनों यानी दुकानदार व लड़की के चेहरे पर कहीं भी हंसी-मज़ाक वाला भाव नहीं था बल्कि दोनों अपनी—अपनी जगह पूर्णतया गंभीर थे.

ख़ूबरसूरत शब्दों का सहारा लेकर इतनी धीरता, इतनी आसानी व बिना आपा खोये भी छोटे-बड़े गंभीर मामले सलटाये जा सकते हैं. इसका अंदाज़ा न था. मेरा तनावग्रस्त तन-मन फूल की तरह हल्का हो उठा था.

हाजीनगर, २४ परगना उत्तर,
प. बंगाल-७४३१३५
मो.: ९८७४११५८८३

कोख

अरुणा जेठवाणी

यह उसका आख़िरी बार मनाली जाना था. मनाली एक पड़ाव था, जो वह पिछले अठारह साल से टालती आ रही थी, पर आज हालात और थे. उसकी शादी हो चुकी थी और उसे छः माह का गर्भ था. इन पिछले छः महीनों में बहुत सारा पानी भावनाओं के पुल तले बह गया था और वह अपने पिता के साथ मनाली पहुंची थी. यूं कहें कि अपनी मां के घर.

ऐसा नहीं है कि विगत काल की कड़वाहटें लुप्त हो गयी हैं. ऐसा भी नहीं कि उसके ज़ख़्म अब सूख गये हैं, पर आज वह हर चीज़ बिलकुल अलग नज़रिए से देख सकती थी.

अचानक होटल 'ब्यॉस' की बालकनी में खड़ी, सोनिया अपने बचपन की आवाज़ें अपने आस-पास गूंजते सुन सकती थी — ''मैं अम्मा के पास कभी नहीं जाऊंगी, मैं उस अंकल के साथ कभी नहीं जाऊंगी. मैं दोनों से नफ़रत करती हूं. वह अपने भीतर ज़हर लिये फिर रही थी. जैसे ही उसने अपने बचपन की भावनाओं, कटु अनुभवों पर तवज्जो दी, तो गरजती व्यास नदी के बहाव की ओर उसका ध्यान गया. वह चक्करदार घुमाव के साथ, छलकती, पटकती, कंपकंपाती पहाड़ी स्थानों से शोर मचाती बिलौर से चमकते पत्थर से, हिमपात को साथ लिये, बेअंत आनंदोल्लास से गुनगुनाते हुए आगे बढ़ती रही थी.

''प्यारी सोनिया, क्या तुम तैयार हो? काका का ट्रक किसी भी पल यहां आ सकता है, तुम्हें ले जाने के लिए.'' सैम मुनचिस, उसके पिता ने अपने कमरे से आवाज़ दी. सोनिया झटके से अपने ख़्यालों की क़ैद से निकली. उसने एक भेड़ को नदी के उस पार ठंड से कंपकंपाते हुए देखा. उसने पहाड़ों की पनाह में झोपड़ियों का जमघट देखा, जो धुएं की काली परतों से लिपटी हुई थी.

'आ रही हूं, पापा', उसने कुछ विराम के उपरांत उत्तर दिया. अपनी आंखों से धुंध को हटाते हुए, उसने अपना पर्स खोला और एक पुराने पीले काग़ज़ का टुकड़ा खोज निकाला. गर्मी के मौसम में सूखे हुए पत्ते की तरह टुकड़े-टुकड़े हो रहा था. यह उसकी मां का लिखा हुआ ख़त था, जो उसकी मां ने बारहवीं जन्मतिथि पर लिखकर भेजा था. उसने उसे एक बार फिर पढ़ा —

''मेरी सबसे अनमोल बेटी, मैं कैसे तुम्हें अपने प्यार का विश्वास दिलाऊं? मां का प्यार तो नदी की तरह अनंत होता है. तुम तो मेरे ख़ून, हाड़-मांस का हिस्सा हो. नाभि-रज्जु का नाता अभी मज़बूत और सलामत है. अगर तुम अपने पिता के साथ इन गर्मियों में आओगी, तो मुझे ख़ुशी होगी. मेरा विश्वास करो सैम और मैं अब भी अच्छे दोस्त हैं. जब वह आता है, तो सब-कुछ मधुर व सुंदर होता है, पर तुम्हारी अनुपस्थिति एक रिक्तता भर देती है. तुम्हारा अभाव सदा रहता है. काश, तुम आ पातीं. मैं तुम्हें देखने के लिए तड़पती हूं. सिर्फ़ एक बार...स्नेह, मम्मा.''

उसे याद था, मनाली में फ़कत मां के जिक्र से वह बहुत ग़ुस्से में हो गयी थी. वह चीख़ी थी, उसने आईने तोड़ दिये, उसने दीवारों को भी अपने बेलगाम ग़ुस्से में मारा... सैम, उसके पिता ने उसे आइस-क्रीम, चॉकलेट व उसके चचेरे भाई-बहनों के साथ पिकनिक पर ले जाकर ठंडा करने की कोशिश की.

''सोना मेरी बच्ची'', उसके पिता सैम ने फिर आवाज़ दी. झटके से उसे जैसे होश आया और उसे अहसास हुआ कि वह अभी तक चित्र को थामे हुए थी. हिमपात की हल्की-

सी परत उसके शरीर पर थी और हवाएं भी बर्फ़ की तरह ठंडी थीं. वह गरम कमरे की ओर मुड़ी. उसके पिता अभी भी बासी अख़बार पढ़ रहे थे, जो उन्होंने रेलगाड़ी में ख़रीदा था. उसने अपने पांव झटके, अपने ऊनी मफ़लर को गले के इर्द-गिर्द टाइट किया और उसने व्हिस्की के आख़िरी पेग को समाप्त किया.

'ट्रक किसी भी समय यहां आ सकता है.' उसने कनखियों से उसकी ओर देखते हुए कहा.

उसने अपने होंठों को बंद कर लिया.

'सोनिया अब तुम मुझे शर्मिंदा मत करना,' एक छिपा हुआ डर उसकी आंखों से ज़ाहिर था.

'प्रिय सोनिया, तुमने वादा किया था कि तुम पीछे नहीं हटोगी. तुम्हारी मम्मा बेसब्री से तुम्हारा इंतज़ार कर रही है.' वह आंसुओं के बीच मुस्कुराने की कोशिश कर रहा था.

'नहीं पापा, कभी नहीं.' ऐसा कहते हुए उसने अपनी बाहें सैम के इर्द-गिर्द लपेटीं और उसे चूम लिया.

'पापा, मैं मम्मा से मिलना चाहती हूं, मैं निश्चित ही...' उसने शब्दों को अपने भीतर जब्त करते हुए कहा.

सैम ने उसकी आंखों में देखा — 'सोनिया, तुमने कभी एक बार भी यह नहीं पूछा कि क्यों मैंने तुम्हारी मां डॉली को काका के साथ शादी करने दी.'

यह सवाल था, जो पापा ने कल रात ट्रेन में भी उससे किया था. उसने अपने कंधे उचकाकर अपना ध्यान सरसों के खेतों की ओर कर दिया, जो रेलगाड़ी से पीछे की ओर भागते नज़र आ रहे थे. उसने अपना ध्यान हिमाचल प्रदेश के खंडहरों पर, समाधि-स्तंभ पर, पहाड़ी पर, मंदिर और बर्फ़ से ढके पहाड़ों पर गोधूलि की किरणों में लगा दिया.

'यह निर्णय इतना आसान नहीं था.' सैम ने उसका हाथ दबाते हुए कहा. 'पर जिस दिन मुझे अहसास हुआ कि तुम्हारी मां काका से प्यार करती है, मैंने उसे जाने दिया. वह उसका पहला प्यार था, उसका हक़ पहले था.'

सोना को इस बात की जानकारी थी कि उसकी मां का किसी रूपवान नौजवान के साथ प्रेम था, जो भेड़ों के कृषि फार्म के बारे में पढ़ने आस्ट्रेलिया चला गया था. वह पांच साल से अधिक वहां रहा. इसी दौरान डॉली के वृद्ध दादा-दादी ने उसे सैम के साथ शादी करने के लिए मजबूर किया, पर पहले प्यार का यह तर्क और उसका दावा करना, उसके गले के नीचे नहीं उतर रहा था. न ही यह कल्पना थी कि उसका पिता अब भी उसकी मां का दोस्त है. यह किस तरह का त्रिकोणीय संबंध है. वह सोचती रही, 'प्रिय, काका यहां किसी भी पल आ सकते हैं,' सैम ने अख़बार को लपेटते हुए कहा. सोनिया ने पल-भर के लिए संपूर्ण अविश्वास की नज़र से देखा. कितनी आसानी से 'काका' का नाम उनकी ज़बान पर आया, उसी आदमी का जिसने उनकी पीठ में खंजर घोंपा था.

'पापा, सचमुच अच्छे इंसान हैं, जिसने अपनी पत्नी उस आदमी को दे दी, जिसे वह प्यार करती थी और वे अब दोस्ती के टुकड़ों पर जी रहे हैं.' वह विचार करते हुए

एक जाना माना नाम, शिक्षाशास्त्री, समृद्ध लेखिका, एक अनुवादक व चित्रकार.
अपने लेखन और कार्य से सिंधी समाज की सेवाओं में अपना योगदान दे रही हैं.

: प्रकाशन :

तीन उपन्यास, दो काव्य संग्रह, प्रांतीय कहानियों का अनूदित संग्रह, और महान अदीब कविवर अब्दुल लतीफ पर लिखा संग्रह 'द सूफ़ी'. दादा जे. पी. वासवानी की जीवनी का लेखन. साधू टी. एल. वासवानी की आत्मकथा (अंग्रेज़ी) का अनुवाद. दूसरा उपन्यास Dance O' Peacock, और At The Wedding प्रथा, प्यार और आगम के संगम का प्रतीक एवं बहुचर्चित उपन्यास रहे हैं. उनका लघुकथाओं के संग्रह 'ब्रिज ओ रिवर कृष्णा' का राजाजी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार. मराठी में किया हुआ अनुवाद 'चांदेरी घुरते, सोनेरी आकाश' प्रकाशित है. रचनाएं प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. अनेक बार पुणे में आदर सम्मान.

: संप्रति :

पुणे की अवकाश प्राप्त प्राध्यापिका. वर्तमान में 'सिंधी भाषा के संवर्धन की राष्ट्रीय परिषद' (मानव संसाधन, मंत्रालय) की उपाध्यक्ष.

बाथरूम की ओर गयी.

'काका', उसे अब भी उसके लिए कुछ कड़वाहट थी. वह आदमी आस्ट्रेलिया से आकर ऐसे कैसे उसकी मां को उससे और उसके पिता से छीन सकता है.

बाथरूम में उसने अपने नग्न शरीर की परछाई देखी. उसका पेट अब स्पष्ट रूप से बाहर आ गया था. लड़का या लड़की... उसने और उसके पति अरविंद ने शर्त लगायी थी... अरविंद... उसे अब उसकी ज़रूरत थी.

वह हज़ारों मील दूर थी, अपने पति अरविंद से. फिर भी वह उसके पास था. यह एक पागलपन था, एक जुनून था. एक भावनाओं का व्हर्लपूल, एक आत्मा पागलपन की हद तक दूसरे की चाह रखती है. क्या वह उसे त्याग सकती है? क्या अगर पापा उसकी शादी किसी और से तय कर दें, जो समाज में उच्च स्थान पर हो. नहीं, नहीं कभी नहीं.

'ओ मां...' वह बड़बड़ाई 'मैं तुम्हें समझ रही हूं... बिल्कुल समझ रही हूं.' वह सिर्फ़ अपनी मां और काका के बीच का प्यार ही नहीं समझ रही थी, पर यह भी अच्छी तरह समझ रही थी कि गर्भाशय में बच्चा उसे अपनी मां की ओर खींचे जा रहा था. वह कोख़ में जिसमें जीवन का स्पंदन है... वह अपनी मां का हाथ पकड़ना चाहती थी...

दरवाज़े पर एक ज़ोरदार दस्तक सुनते ही उसने जल्दी से कपड़े बदले. एक ढीला-सा फ्रॉक और ऊपर से एक पुलओवर. कुछ धीमी आवाज़ें थीं, शायद काका आ गये थे. वह सीढ़ियों से नीचे उतर आयी. होटल के बाहर खंदकों में सुलगती आग बलूत के पेड़ों के तले दमक रही थी. जैसे ही वे खुरदरे पहाड़ी रास्ते पर सफ़र कर रहे थे, उसके ख़्याल वेग के साथ अरविंद की ओर गये, उसका सुंदर चेहरा, भूरे रंग की आंखें, धरती की तरह भूरा. वह प्यार के जाल में कब फंसी थी?

१८ सितंबर, शाम के ८ बजे क्लब में! उसे एक नज़र देखा, इच्छा की भावना, प्यार का जलवा और अभिलाषा की तीव्रता, चोरी छुपे सफ़र करती, उसके मन की खिड़की खोल गयी. वह चमत्कार का एक पल था. एक सौगात का पल, जागरूकता का पल; एक जगाती हुई आवाज़, अजीब अध्याय, एक प्यासी बदरी की तरह, जो बारिश को तरसती, तड़पती है. ऐसा ही प्यार था, उसे अपने पति अरविंद के लिए. हो सकता है ऐसा ही प्यार मां को काका से था.

जैसे ही जीप टीले पर पहुंची, काका ने धुंध को देखते हुए कहा — 'ये मणिकरण की बर्फीली पहाड़ियां हैं.' सोना ने मुड़कर पीछे देखा और उनकी आंखें मिलीं. क्या उसने अरविंद की छवि देखी उन आंखों में?

'सोनिया, हम सब तुम्हारी मां से प्यार करते हैं. तुम एक मेहरबानी करना, उसे चोट न पहुंचाना.'

उसकी आवाज़ मधुर थी, देवदार की ख़ुशबू की तरह. उनकी जीप बर्फ़-सी ख़ामोशी के साथ चल रही थी. जब तक वे एक छोटे से किले पर नहीं पहुंचे, जो ऊंचाई पर बना हुआ था. काका ने उसके कंधे को थपथपाया. वे एक शाही पथ पर चलते रहे. एक लाहाउली औरत बैंगनी रंग के दुशाले से लिपटी हुई, दरवाज़ा खोल रही थी.

घर के भीतर माहौल गरम था. चिमनी में लकड़े जल रहे थे. फ़ायर प्लेस के ऊपर फ्रेम की तस्वीरें सुंदर ढंग से सजायी हुई थीं. उसके सामने झूलने वाली कुर्सी, जिस पर शायद उसकी मां बैठती हो — ऊनी सौग़ातें बुनते हुए अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के लिए, खाली थी.

किले के रास्ते और गलियारे जाने बिना, वह भागी किसी अतंर्ज्ञान के तहत, वहां... जहां उसकी मां बीमार पड़ी हुई थी.

'मां, मैं आ गयी हूं.' वह रोयी, जैसे ही उसने अपनी मां के कमरे का दरवाज़ा खोला. एक निरीह, हताश औरत उदासी को ओढ़े शीशम लकड़ी के बने राजायी बिस्तरे पर लेटी थी. सोनिया उसकी ओर लपकी.

'मां...मां...' सोनिया ने उस चेहरे का चुंबन किया और आंसुओं से तर कर दिया. दो मर्द खड़े होकर उस भावनात्मक विस्फोट के मिलन को देख रहे थे. दो औरतों के बीच, एक वृद्ध और एक जवान. ऐसा लगता था जैसे व्यास नदी का उफनता पानी पर्वतों के बीच के एक संकुचित मार्ग से बह रहा हो.

चाय के बाद, सोनिया मां के बिस्तरे पर एक आरामदेह स्थान पर बैठी. ख़ुद को गरम और महफ़ूज पा रही थी. वह सोचकर हैरान थी कि वह कैसे इस औरत से, अपनी मां से नफ़रत कर पायी, जो देखने में नाजुक और पाकीज़ा थी, एक गुलाब की पंखुड़ी की तरह. उसकी मां फुसफुसाई — 'सोनिया, मैंने इस दिन का बहुत इंतज़ार किया है. मुझे पता था कि तुम किसी दिन जब ख़ुद प्यार करने लगोगी, तो तुम समझ पाओगी कि इसकी शक्ति क्या है? प्रिय, क्या तुम प्यार के बारे में बहुत ही अनोखा, अद्वितीय सच जानती

लघुकथा

निष्कलंक

✍ ज्ञानदेव 'मुकेश'

बबलू और उसके नन्हे साथी शाम को 'चोर-चोर' का खेल खेला करते. उन्हें इस खेल में बड़ा मज़ा आता. वे एक-दूसरे का सामान कहीं छुपा देते. जिसका सामान चोरी होता, उसे खोजना होता. इस काम में वह सफल हो जाता तो उसे विजयी होने का ख़िताब मिलता. नहीं खोज पाता तो कुछ सज़ा देने के बाद उसका सामान वापस कर दिया जाता.

बबलू के पापा को यह खेल क़तई पसंद नहीं आता. वे कहते, "इस खेल से चोरी करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है." मगर बबलू नहीं मानता.

बबलू की नयी साइकिल ली गयी थी. वह उसे बरामदे में लॉक करके रखता था. एक दिन वह साइकिल चोरी चली गयी. इस पर बबलू के पापा उस पर बहुत नाराज़ हुए. उन्होंने कहा, "चोर-चोर का खेल खेलते हुए ज़रूर तुम्हारे किसी साथी में सच्ची चोरी की प्रवृत्ति जाग उठी और उसी ने साइकिल चुरा ली."

बबलू दुखी हो गया. उसने कहा, "पापा, हम नकली चोर हैं. हम सिर्फ़ अपना दिल बहलाते हैं. हम दूसरों का सामान ज़रूर वापस कर देते हैं."

मगर पापा नहीं माने. उन्होंने बबलू को बहुत डांटा और भविष्य में यह खेल न खेलने की सख़्त हिदायत दी. बबलू बहुत रोया. उसने पापा को बहुत समझाया कि मेरे दोस्त ऐसे नहीं हैं. मगर पापा की नाराज़गी दूर नहीं हुई. इधर साइकिल की खोज चलती रही. मगर वह नहीं मिली.

आख़िर तीसरे दिन घर का नौकर बबलू के पापा के पांव पर गिरकर रोने लगा. उसने कहा, "बबलू के साथियों को दोष न दें. वे निश्छल, निष्कपट हैं. वे सिर्फ़ खेल के चोर हैं. असली चोर मैं हूं. साइकिल मैंने चोरी की है."

इसके बाद एक मासूम चोर का कलंक धुल गया था.

✆ **फ़्लैट संख्या-१०२, ई-ब्लॉक, प्यारा घराना कॉम्प्लेक्स, चंदौती मोड़, गया-८२३००१ (बिहार) मो.: ९४७०२००४९१**

हो?' उसकी मां ने पूछा.

'हां मम्मा, एक प्यार की चिंगारी दूसरी को प्रज्वलित करती है.'

और उसने अपनी मां को फिर से चूमा. पेट के भीतर बच्चे ने उसे ज़ोर से लात मारी.

'आओ सोनिया, चलो हम सैर करें पिछवाड़े के जंगल में.' काका ने कहा और सोनिया को किले के पिछवाड़े का रास्ता दिखाने लगे. सैम और डॉली कमरे में रह गये. चाय की चुस्कियां लेते हुए और एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराते हुए. उन्हें ख़ुशी थी कि उनकी बेटी का अब मां से मिलन हो गया है. यह पुनर्मिलन दिलों को नम करता रहा और बीते बरसों की धूल को साफ़ करता रहा.

पिछवाड़े में देवदार के पेड़ों का एक घना जंगल-सा था. अठारह देवदार के पेड़ अलग-अलग उम्र के, एक करामाती कोलॉज़ बनकर प्यार का इज़हार कर रहे थे, मनाली की बर्फ़ीली ढाल पर. हां, प्यार का कोलॉज़, क्योंकि हर एक पेड़ पर सोनिया के जन्म की तारीख़ टंकी हुई थी. सोनिया को विश्वास नहीं हो रहा था. वह भीतर गहराई तक इस प्यार की आंच को महसूस कर रही थी. उसकी आंखें तर थीं. हर साल उसकी मां ने एक पेड़ लगाया था, देवदार का पेड़, उसके प्यार का तोहफ़ा, उसके जन्मदिन का उत्सव मनाने के लिए, जब बेटी मां से मीलों दूर थी. वह बेटी जिसने अपने बचकाने बर्ताव व ग़ुस्से से फ़ासले पैदा किये थे. वही फ़ासले कोख़ में पनप रही नयी जान ने इतनी सुंदरता से पाट लिये.

✆ ***H-२ प्लूटो सोसायटी, कल्याणी नगर, पुणे-४११००६. मो. : ९८६०६०७३३***

(अनुवाद : देवी नागरानी)

सृजन यात्रा

माधव नागदा

सप्ताह भर की डाक इकट्ठा हो गयी थी. कारण कि इस अवधि में मैं एक साहित्य समारोह में बाहर चला गया था. आकर देखा तो ढेर सारी डाक. यों देखा जाये तो एक लेखक के लिए डाक जीवनदायिनी औषधि से कम नहीं होती. यह एक ऐसा पुल है जो उसे संपादकों, पाठकों और साथी लेखकों से जोड़े रखता है. मेरे लिए तो पोस्टमैन और पुस्तकालयाध्यक्ष दुनिया के दो सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं. मैं जब घर पर नहीं होता हूं तो दोस्त बिना कोई पूछ-ताछ किये या तो पोस्ट ऑफ़िस पहुंच जाते हैं या फिर लाइब्रेरी. और मैं सचमुच इन दोनों में से किसी एक जगह पर मिल जाता हूं. मैंने डाक खोलकर चार ढेरियां बनायीं; पुस्तकें, पत्रिकाएं, पांडुलिपियां और पत्र. पत्रिकाओं में कुछ तो वे थीं जिनमें मेरी रचनाएं प्रकाशित हुई थीं, कुछ थीं नमूना प्रतियां और बाक़ी प्रति माह नियमित आने वाली, जिनका कि मैं ग्राहक था. पुस्तकें समीक्षार्थ आयी थीं और पांडुलिपियां भूमिका या ब्लर्ब मैटर के लिए. हालांकि इस प्रकार का लेखन मेरी सृजनात्मकता के हिस्से का बहुत-सा समय हड़प जाता है मगर क्या करूं आदत से लाचार हूं, मना नहीं कर सकता. मेरा लिखा सहयात्रियों को पसंद है क्योंकि मैं रेत में से भी तेल निकाल लेता हूं. नतीज़ा यह है कि मेरे कमरे की अलमारियां रेत से ठसाठस भर गयी हैं. स्फटिक भी हैं परंतु बहुत कम. पत्रों की बात करूं तो कुछ पत्र ऐसी संस्थाओं से थे जो मुझे सम्मानित करने के लिए परम इच्छुक थीं. बस प्रवेश शुल्क स्वरूप निर्धारित राशि उन्हें अग्रिम अर्पित करनी थी. मैंने ये पत्र फाड़कर कूड़ेदान में डाल दिये. एक-दो ऐसी संस्थाओं के पत्र भी थे जिन्होंने राशि की मांग नहीं की थी. अनुभव लेने के लिए एक बार मैं भी पहुंच गया था. आयोजक ईमानदार थे. उन्होंने पहले ही घोषित कर दिया था कि हम मार्ग व्यय प्रदान करने में असमर्थ हैं. फिर भी सम्मान के इच्छुक बहुत सारे समर्थ साहित्यकार वहां पधारे थे. इनमें से कई के नाम मैं पहली बार सुन रहा था. मंच से आयोजक महाशय बिंदास बोल रहे थे कि जिन महानुभावों का सम्मान हो चुका है वे शीघ्र मंच से उतरकर सभागार में चले जायें और अब मैं जिनका नाम पुकारूं वे फ़ौरन मंच पर आ जायें. देर न करें. मुझे डेढ़ सौ लोगों को और निबटाना है. आयोजक नाम पुकारते गये और 'लोग' दौड़-दौड़कर निबटने के लिए मंच पर चढ़ने लगे. अफ़सोस कि इनमें मैं भी था. मैंने ऐसी संस्थाओं के पत्र भी टोकरी के हवाले कर दिये.

अब रह गये पाठकों और आलोचकों के पत्र. पाठकों ने मेरी कमियों को नज़रअंदाज करते हुए ख़ूब तारीफ़ की थी. बहुत अच्छा लगा. परंतु आलोचकों ने मायूस कर दिया. उन्होंने मेरी रचनाओं के शुक्ल पक्ष को दरकिनार कर कृष्ण वर्ण धब्बों के लिए अच्छी-ख़ासी लताड़ पिलायी थी. मैंने अपनी ऊर्जा बचाये रखने के लिए पाठकों का स्मरण किया.

एक और पत्र रह गया था. यह एक सुप्रसिद्ध हिंदी पत्रिका के संपादक का था. ग्राम कथा विशेषांक के लिए कहानी मांगी थी. वह भी अति शीघ्र. मज़ेदार बात यह थी कि इन्हीं संपादक जी ने 'नहीं लिखने का कारण' पर अच्छी-ख़ासी बहस चलायी थी जिसमें पुरानी पीढ़ी के बहुत से लेखकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था. मुझे नहीं लिखने का कोई कारण नज़र नहीं आ रहा था, मैंने कहानी लिखने का फ़ैसला किया. मैंने टेबल पर सुचिक्कन श्वेत काग़ज़ रख अपनी उंगलियों को तोड़ा-मरोड़ा. एक सुंदर-सा पेन निकाला जिसे पिछले दिनों किसी ने मुझे बड़े प्रेम से उपहार में दिया था. यह सनमाइका जड़ी आकर्षक टेबल

मैंने हाल ही में ख़रीदी है. और यह घूमने वाली चेयर भी. कभी-कभी इन चीज़ों को देखकर हंसी भी आती है. भला सुंदर टेबल और चमकीले पेन और क़ीमती चेयर और चिकने काग़ज़ों से ही कोई लेखक बन जाता है? जब ये चीज़ें मेरे पास नहीं थीं तब क्या मैं नहीं लिख सकता था? बल्कि मेरी कई यादगार कहानियां उस ज़माने की हैं जब मैं ज़मीन पर बैठ लोहे की पेटी पर फटे-पुराने काग़ज़ रख लिखने की परिस्थितियों से गुज़र रहा था.

ख़ैर, अब मैं इसी तरह हंसकर स्वयं को ज़मीन से जोड़े रखने की चेष्टा करता हूं, उखड़ने से बचाता हूं. बहरहाल पेन काग़ज़ पर टिक गया था और मैं कुछ लिखने ही वाला था कि टेबल पर किसी ने खट् से चाय का कप रखा. पत्नी थी. लट उलझी हुई. साड़ी का पल्लू कमर के गिर्द लिपटा हुआ. एक हाथ में झाड़ू लिये वह 'युद्धरत आम आदमी' की तरह खड़ी थी. 'पी लो ! बहुत देर से काम कर रहे हो.' उसने अपने सूखे पपड़ाए होठों पर स्नेह भरी मुस्कान बिखेरते हुए कहा और किसी नये मोर्चे पर निकल पड़ी. मैं उसकी पीठ देखता रहा और सोचता रहा कि उसे चाय के लिए कौन पूछता होगा? कौन कहता होगा कि अब थक गयी हो ज़रा सुस्ता लो. क्या मैंने कहा कभी? याद नहीं आ रहा. शायद नहीं. वह इस बात का बुरा भी नहीं मानती. जानती है कि मैं कितना व्यस्त रहता हूं और कितने महत्त्वपूर्ण काम में लगा हूं. मैंने पुनः लिखने का उपक्रम किया. मगर किस पर लिखूं? किसे बनाऊं अपनी कहानी का नायक? किसकी व्यथा को उंडेलू काग़ज़ पर? किसके आंसुओं को रोशनाई बनाऊं?

प्रत्युत्तर में कई-कई हाथ मेरे दिलोदिमाग़ पर दस्तक देने लगे. कई जाने-अनजाने लोग मानसपटल पर हरकतें करने लगे मानो कह रहे हों 'सृजन करो कुछ ऐसा कि हमारी ज़िंदगी बदल जाये. हमारी गूंगी पीर को भाषा दो. हमारे अंतस में हिलोरें ले रहे सागर के कपाट खोल दो ताकि दर्द दरिया बनकर बहे और तमाम लोगों के दिलों में समा जाये.' अलग-अलग लोग, जीने के अपने-अपने अंदाज़, जीवनरूपी महाभारत और चक्रव्यूह से एक विजेता की भांति निकल आने की छटपटाहट. दुष्यंत याद आते हैं, 'मुझ में रहते हैं करोड़ों लोग, चुप कैसे रहूं.'

इसी समय टेबल पर गरमागरम नाश्ते की प्लेट प्रकट होती है. पत्नी बड़े लाड़ से कहती है, 'लो नाश्ता कर लो. चाय भी नहीं पी अभी तक? ठंडी हो गयी होगी. ठहरो, दूसरी बनाकर लाती हूं.

विचार प्रवाह टूटता है भीतर तनिक रोष उपजता है

२० दिसंबर १९५१, नाथद्वारा (राजस्थान).

एम.एस.सी. (रसायन विज्ञान), बी. एड.

लेखन विधाएं: कहानी, लघुकथा, कविता, डायरी, समीक्षा. हिंदी, राजस्थानी दोनों भाषाओं में समान रूप से लेखन.

: प्रकाशन :

कहानियां :- १.उसका दर्द, २.शापमुक्ति, ३. अकाल और ख़ुशबू, ४. परिणति तथा अन्य कहानियां (हिंदी कहानी संग्रह) ५. फिर कभी बतलायेंगे (हिंदी डायरी) ६.उजास (राजस्थानी कहानी संग्रह), ७. सोनेरी पांखां वाळी तितलियां (राजस्थानी डायरी), ८. मैं शब्दों का कुंभकार (हिंदी कविता संग्रह). लघुकथाएं : १. आग, २.अपना-अपना आकाश; अनुवाद : 'आग', 'शाप मुक्ति' तथा 'अकाल और ख़ुशबू' पुस्तकों का मराठी में अनुवाद प्रकाशित. 'आग' अंग्रेज़ी में भी अनूदित.

: संपादन :

सृजनपथ (हिंदी विविधा), शिक्षा विभाग राजस्थान, २०१३ के अतिथि संपादक

: विशेष :

'उसका दर्द' राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सुमनेश जोशी पुरस्कार से पुरस्कृत; अंतर्राष्ट्रीय विश्व शांति प्रबोधक महासंघ द्वारा राष्ट्रीय हिंदी सेवी सहस्राब्दी सम्मान. राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार (कविता- ठहरा हुआ वक्त के लिए) 'सोनेरी पांखां वाळी तितळियां 'राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी द्वारा शिवचंद्र भरतिया सम्मान से सम्मानित; साहित्य मंडल, नाथद्वारा द्वारा नाथद्वारा रत्न सम्मान तथा साहित्य सुधाकर उपाधि प्रदत्त; आचार्य निरंजन नाथ विशिष्ट सम्मान-२०१३; कथा साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थान, जोधपुर द्वारा रघुनंदन त्रिवेदी कथा अलंकरण से विभूषित; मंजिल ग्रुप साहित्यिक मंच, दिल्ली द्वारा लालबहादुर शास्त्री साहित्य रत्न से सम्मानित; कहानियां कई भारतीय भाषाओं मे अनूदित एवं मंचित; संस्थापक सदस्य राजस्थान साहित्यकार परिषद, कांकरेली; पूर्व सदस्य, राजस्थान सहित्य अकादमी.

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन एवं सामाजिक कार्य.

परंतु प्रकट नहीं करता हूं. मैं टूटे हुए तार जोड़ता हूं. मन की आंखें घर-घर घूमती हैं. एकाएक दिमाग़ के परदे पर मायाराम जी का मकान उभरता है. अशांति से उबलता, खदबदाता. यहां परिवार का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के प्रति अ–शालीन है; अभद्रता की हद तक. हर किसी ने मायाराम जी को कोई न कोई उपाधि दे रखी है. मिसेज़ मायाराम तू-तड़ाक से बात करती है और मक्खीचूस कहकर पुकारती है. बड़ा बेटा उन्हें बोलता है नागदेवता. कहता है पेंशन के दस लाख रुपयों पर मेरा बाप नाग बनकर लेटा हुआ है. न गाड़ी लेता है न ढंग का मकान बनाता है. इसने सारी उम्र एक कमरा-किचन में गुज़ार दी, हमें भी इस संकरी मंडी में रहने को मज़बूर कर रहा है. बहू ने उन्हें दुर्वासा ऋषि की उपाधि से विभूषित कर रखा है. उसका कहना है कि ससुर की नाक पर ग़ुस्से की पोटली बंधी हुई है. मायाराम जी हर किसी की उपेक्षा के शिकार हैं. अपने अस्तित्व का अहसास कराने के लिए वे चुन-चुनकर शब्द रूपी तोप के गोले दागते हैं. सुनने वालों के कान के परदे तो फटने ही हैं. परंतु घर वालों पर कोई असर नहीं होता. मायाराम आसपास के क्षेत्र में विघ्नतोषी के रूप में विख्यात हैं. कोई-कोई तो उन्हें अर्द्धविक्षिप्त भी समझता है, परंतु वे हैं नहीं. लोग उनसे कन्नी काटना पसंद करते हैं. न जाने किस बात पर भिड़ जायें कुछ भरोसा नहीं. वस्तुतः मायाराम जी ठेस पहुंचाने का कोई भी मौक़ा हाथ से गंवाना नहीं चाहते हैं. एक बार रामलाल जी ने ख़ुशख़बरी दी, 'माया, अपन ने भी कार ले ली है. बड़का कई दिनों से कह रहा था सो दिला दी. धंधे पर जाना-आना पड़ता है, सुविधा रहेगी.' मायाराम बोले, 'रामलाल, यह तूने क्या कर दिया? कार वाले तो कुत्ते की मौत मारे जाते हैं. अख़बार नहीं पढ़ते हो? आये दिन एक्सीडेंट.' रामलाल माया को आश्चर्य और क्षोभ से देखते रह गये.

मैं जानता हूं मायाराम जी पहले ऐसे नहीं थे. जब से उनके चार में से दो बेटे दुर्घटना में मारे गये तब से वे सैडिस्ट हो गये हैं. ऊपर से घरवालों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार. मानो करेला और नीम चढ़ा. उनके भीतर घुमड़ रहा दर्द दूसरों को भी दुखी देखना चाहता है. स्वयं की निराशा को वे अन्य लोगों में आरोपित करने की कोशिश करते हैं. शायद इससे उन्हें सुख मिलता है. तो क्या मायाराम जी एकदम रूखे हैं? सूखे ठूंठ? बुरे ही बुरे? यदि ऐसा होता तो वे अपनी दो नन्हीं पोतियों को कंधे पर बिठाये क्यों घूमते हैं? अर्थात उनके भीतर कहीं एक कोने में हरियाली कसमसा रही है. यदि घरवाले प्रेम का झरना प्रवाहित करें तो मायाराम जी के हृदय का बंजर पुनः हरा-भरा हो सकता है. धीरे-धीरे मायाराम जी वाला प्लॉट मेरे मानस में मुकम्मल कहानी का रूप लेने लगता है. इतने में पत्नी फिर से आती है. हवा के झोंके की तरह. इखरे-बिखरे अख़बार, पत्रिकाएं, पुस्तकें तरतीबवार जमाती है. क़िताबों की रैक पर कपड़ा मारती है. मसलकर फेंके हुए काग़ज़ के बेकार टुकड़ों को बुहारती है. मैं उसके जाने की प्रतीक्षा करता हूं. यह मेरी कमज़ोरी है कि जब तक कोई मेरे आस-पास होता है मैं लिख नहीं पाता. बस मन ही मन झुंझलाता हूं और कुढ़ता हूं. वह तो जाने का नाम ही नहीं ले रही. फ़र्श पर पोछा लगाना आरंभ कर देती है. 'ओह! क्या कर रही हो. मुझे लिखने क्यों नहीं देती?'

'मैं आपके आस-पास की दुनिया को सुंदर और रहने लायक बना रही हूं.'

'क्या! क्या!' मेरा मुंह खुला का खुला रह जाता है. यह तो लेखकों की भाषा है. एक सीधी-सादी कम पढ़ी-लिखी गृहिणी के होठों पर ये शब्द कैसे? मैं पत्नी की तरफ़ देखता हूं. वह निर्लिप्त भाव से अपना काम कर रही है. जहां से पोछा गुज़रता है, मार्बल का फ़र्श आईने-सा चमकने लगता है. मैं अपना चेहरा देख सकता हूं.

हमारा मिशन भी तो यही है. हम साहित्यकार दुनिया को बदलना चाहते हैं. चाहते हैं कि हमारी रचना पढ़ने के पश्चात पाठक यह महसूस करे कि अब वह पहले से ज़रा भिन्न है, कि अब वह अधिक जुझारू, अधिक सकारात्मक, अधिक संवेदनशील और अधिक लोकतांत्रिक है. उसे लगे कि अब दुनिया बेहतर और रहने लायक हो रही है. क्या वस्तुतः ऐसा हो पा रहा है? हम लोग काग़ज़ पर काग़ज़ काले किये जा रहे हैं इसके बावजूद दुनिया और अधिक बदमज़ा, बदरंग, और बदहवास होती जा रही है. पुरानी पीढ़ी का 'नहीं लिखने का कारण' शायद यही है. आज मुझे उनकी निराशा सारगर्भित लगी. मैं पेन रख देता हूं. लिखने का सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है. सोचता रहता हूं. लेखन की सार्थकता को लेकर कई-कई सवाल मुझे कोंचने लगते हैं. क्या हासिल कर लिया इतने वर्षों तक क़लम घिसते-घिसते! चंद शालें, कुछ प्रतीक चिह्न और अभिनंदन पत्र बस. क्या इनाम-इकराम से दुनिया बदलती है? लेखन की सार्थकता बस यहीं तक सीमित है? क्या आज दिन तक एक भी पाठक ने यह लिखा या फ़ोन किया है कि आपकी फलां रचना पढ़कर मेरी ज़िंदगी बदल गयी? फिर हम क्यों लिख रहे हैं? किसके लिए लिख रहे हैं? मैं सोचते-सोचते और टहलते-टहलते किचन गार्डन में जा पहुंचता हूं. कुछ क्यारियां, कई गमले, बहुत से पौधे, रंग-बिरंगे फूल. यह

स्व. आर. पी. शर्मा 'महरिष' की दो ग़ज़लें

आदमीयत बांटता हूं,
मैं ये नेमत बांटता हूं.
दिल के कंगालों में जार,
दिल की दौलत बांटता हूं.
प्यार के नग़्मे सुनाकर,
मैं मुहब्बत बांटता हूं.
हौंसले हैं पस्त जिनके,
उनको हिम्मत बांटता हूं.
फ़ासले हैं जिन दिलों में,
उनको कुर्बत बांटता हूं.
जो रहे गुमनाम 'महरिष',
उनको शुहरत बांटता हूं.

जशन हम क्यों न मनायेंगे मनाने की तरह,
वो हमें दिल से बुलायें जो बुलाने की तरह.
जाम हम बढ़ के उठा लेते उठाने की तरह,
क्यों न पीते जो पिलाते वो पिलाने की तरह.
तुम ठहरने को जो कहते तो ठहर जाते हम,
हम तो जाने को उठे ही थे न जाने की तरह.
कोई आंचल भी तो हो उनको सुखाने के लिए,
अश्क तब कोई बहाये भी बहाने की तरह.
टीस कहती है वहीं उठ के तड़पती सी ग़ज़ल,
दिल को जब कोई दुखाता है दुखाने की तरह.
गर्मजोशी की तपिश भी तो कुछ उसमें होती,
हाथ 'महरिष' जो मिलाते वो मिलाने की तरह.

द्वारा डॉ. रमाकांत शर्मा,
४०२- श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई- ४०००८९.

सब पत्नी की मेहनत है. उसी का रचना संसार है. जब मैं अपने कमरे में कुछ लिख रहा होता हूं तो पत्नी यहां चली आती है; क्यारियों में कुदाल चलाती है, पौधों को पानी देती है और अपने पसंद के नये-नये पौधे रोपती है. यहां तक कि वह पौधों से बतियाती भी है. पत्नी मेरे कमरे को 'सुंदर और रहने लायक' बनाने के पश्चात यहां आ गयी है, हाथ में कुदाल लिये. मैं उसकी कुदाल को क़लम कहता हूं. जिस प्रकार मेरी टेबल पर बहुत सारे पेन हैं उसी प्रकार पत्नी के पास भी कई प्रकार की क़लम हैं. मसलन रसोई घर में कलछी और चम्मच रूपी क़लमें हैं जिनसे वह स्वादिष्ट भोजन की रचना करती है. वहां सीढ़ियों के नीचे थोड़ी सी जगह में दो-तीन झाड़ू रखी हुई हैं जिनसे वह प्रतिदिन पूरे घर में सफ़ाई की इबारत लिखती है. और यहां किचन गार्डन में कुदाल, वस्तु और रूप में संतुलन की मिसाल!

वह पौधों को निरख रही है, मायूस निग़ाहों से. पत्ते मुरझा गये हैं. फूल कुम्हलाये हुए. वह अपनी क़लम नीचे रख देती है. क्यारी की मेंड़ पर बैठकर न जाने किन ख़्यालों में खो जाती है. उसके ललाट पर पसीने की बूंदें मोतियों की लड़ ज्यों चमक रही हैं. मुझे देखकर कहती है, 'कोई दवा ला दो न. देखो बेचारे किस तरह सूखते जा रहे हैं.'

उसके आग्रह को टालना मेरे लिए नामुमकिन होता है. वह हठ नहीं अनुरोध करती है. इतने साल साथ रहकर मैंने जाना है कि 'क्रोध नहीं करुणा' उसके जीवन का मोटो है. मैं शाम को बीज भंडार से दो तरह की सब्ज़ियां लाकर देता हूं. 'अस्सी रुपये की हैं. इतनी तो सब्ज़ियां भी नहीं लगेंगी.' फिर तुम्हारा श्रम. दिन भर इन्हीं में लगी रहती हो. क्यों इस तरह स्वयं को थकाती हो?'

वह मिनट भर मौन रहती है. फिर गंभीरतापूर्वक बोलती है जैसे बहुत बड़ी दार्शनिक हो, 'तुम इतनी सारी क़िताबें मंगाते हो, पढ़ते हो. बहुत कुछ लिखते हो, छपने के लिए भेजते हो. जितनी मेहनत करते हो, क्या उतना पारिश्रमिक मिल पाता है? जैसा तुम चाहते हो वैसा हो पाता है? फिर भी तुम अपने काम में डटे हुए हो. भला क्यों?'

उसके प्रतिप्रश्न में ही उत्तर छिपा हुआ था. कितने शानदार ढंग से उसने अपनी बात कह दी. मैं आवेग में उसे सीने से लगा लेता हूं. उसका चेहरा प्रफुल्लित हो जाता है और क्यारी में बैंगन, टमाटर, भिंडी तथा मटर के पौधे एकाएक ताज़ादम हो उठते हैं. फूल खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं. मैं तय करता हूं कि अपनी सृजन यात्रा ज़ारी रखूंगा.

लाल मादड़ी (नाथद्वारा)- ३१३३०१
मो.: ०९८२९५८८४९४
ईमेल - madhav123nagda@gmail.com

आमने-सामने

"साहित्य लेखन एक सामाजिक दायित्व है !"

✍ *माधव नागदा*

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ और जयराम सिंह गौर से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है माधव नागदा की आत्मरचना.

हमारे गांव में उन दिनों केवल पांचवीं तक स्कूल था. आगे पढ़ने के लिए बारह किलोमीटर दूर नाथद्वारा के मल्टी परपज़ हायर सैकंडरी स्कूल जाने की मज़बूरी थी. लड़कियों का तो आगे पढ़ने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, लड़के भी बहुत कम जा पाते. आवागमन के साधन सीमित थे. मुख्य सड़क एक किलोमीटर दूर थी. उदयपुर से नाथद्वारा प्राइवेट बसें चला करती थीं. हम चार-पांच लड़के थे. बस आती देख हाथ जोड़कर खड़े हो जाते. कोई रुकती कोई नहीं रुकती. अलबत्ता कंडक्टर लोग हमसे किराया नहीं लेते. लेते भी क्या, हमारी जेबें तो खाली रहा करती थीं. प्रायः हम लेट हो जाते. स्कूल में जाते ही मुर्गा बनना पड़ता. बस्ता मुर्गे की पीठ पर.

पिताजी बीमार रहते. कभी-कभार उनके दोस्त मुंह पर गमछा बांधकर आते और ज़रा दूर बैठकर ढाढस बंधाते.

४ जुलाई १९६२. मुझे सातवीं कक्षा में प्रवेश लेना था. इधर पिताजी की तबीयत अधिक ही ख़राब थी. मां उनका सिर दबा रही थी, पैर दबा रही थी, सीना मल रही थी. बोली, 'बेटा स्कूल जा रहा है, भर्ती होने.'

'जाने दे, पूरा पढ़ाना, कुछ भी हो जाये, बीच में पढ़ाई मत छुड़ाना.' पिताजी ने कहा जैसे किसी गहरे कुएं से आवाज़ आयी हो. ये पिताजी के आख़िरी शब्द थे. ये शब्द मां के अंतस में अनहद नाद की तरह गूंजते रहे. वह मुझे पढ़ाती रहीं. खेत रहन रखे, गहने बेचे. वैसे गहने ज़्यादा कुछ बचे नहीं थे. अधिकतर तो देवर जी चकमा देकर ले गये. रह गयीं चांदी की चूड़ियां और पैरों में चांदी के ही कड़े, जो कि स्त्री होने की निशानी थे. मां ने इनका भी मोह नहीं किया.

नौवीं कक्षा में विज्ञान विषय चुना. 'फिज़िक्स, केमिस्ट्री, मैथ्स' दो शिफ़्टों में स्कूल था. विज्ञान के विद्यार्थियों को प्रातः सात बजे पहुंचना होता था. मां ने साइकिल ख़रीद दी.

सेठ जी पिताजी के घनिष्ठ थे, मुझे भी पहचानते थे. पिताजी के रहते एक-दो बार घर भी आ चुके थे. कुछ नक़द पैसे दिये बाक़ी का उधार. फ़सल पकने पर देंगे. परंतु फ़सल कोई ढंग से पकती नहीं थी. अकाल मेहरबान था. स्कूल की ड्रेस थी सफ़ेद कमीज़ और खाकी पेंट या हाफ़पेंट. मैं सर्दी हो या गर्मी हाफ़पेंट पहनकर जाता था. पढ़ाई में आनंद आने लगा था. ख़ासकर रसायन विज्ञान के प्रयोग बहुत लुभाते.

साइंस विषय मिल जाने से गांव में मेरी कद्र बढ़ गयी. आस-पास के चार-पांच गांवों से मैं ही था जो साइंस पढ़ रहा था. उस समय साइंस पढ़ना बहुत गर्व योग्य बात समझी जाती थी. लोग कहते छोरा वैज्ञानिक बनेगा. नये आविष्कार करेगा. कुछ लोग एक दूसरी बात भी कहते, 'छोरा गया काम से, अब ये बाल की खाल निकालेगा, धर्म-कर्म को नहीं मानेगा, भगवान को भाटा समझेगा.'

वैज्ञानिक बनने की राह पर मैं अग्रसर हो ही रहा था कि कुछ घटनाओं ने मेरे जीवन की धारा ही बदल दी.

जवाहरलाल नागोरी हमारे गांव के पटवारी हुआ करते थे. गांव में सारे घर खपरैल के. वे रहते थे एक मील दूर करोली गांव के पक्के मकानों में से किसी एक में. युवा तुर्क, जोशीले, पटवारी की नौकरी में आये ही थे. एक दिन जब मैं स्कूल से लौटा तो मां ने बताया कि पटवारी 'सा बहुत चिल्लाकर गये हैं. कितने साल हो गये लगान अभी बाक़ी है. जमा करवाने का नाम ही नहीं. बाप का माल समझ रखा है. अगर सात दिन के अंदर-अंदर नहीं जमा करवाया तो ढोल बजवाऊंगा, खेत-कुएं सब नीलाम करवा दूंगा. सरकारी पैसा हज़म करना कोई हंसी-खेल नहीं है.

लगान कैसे देते? लगातार अकाल. एक फ़सल भी मुश्किल से पैदा होती. खाने को मिलती मक्का की रोटी. वह भी कभी-कभी एक जून. सब्ज़ी की जगह कांदा (प्याज)-मिर्च. गेहूं की चुपड़ी रोटी तो होली-दीवाली नसीब होती. स्कूल की एक ही ड्रेस. रात को धोता और सुबह पहनकर जाता. लोटे में अंगारे भरकर प्रेस करता. साइकिल का उधार बाक़ी. दुकान बचाकर निकलता कि कहीं सेठ पकड़ न ले. घर में तो ऊंदरे (चूहे) एकादशी कर रहे हैं और पटवारी कहता है कि लगान जमा करवाओ.

इधर मैं दसवी में पहुंचा और उधर पटवारी जवाहर जी नागोरी हमारे गांव आ पहुंचे. पटवारी भवन जो बन गया था. मां और मैं दोनों भयभीत. अब तो रात-दिन की उगाही. कभी भी ढोल बज सकता है.

एक दिन पटवारी जी ने मेरा नाम लेकर कड़कदार आवाज़ लगायी, 'बाहर आओ.'

मैं डरते-डरते बाहर गया. 'कहां है तेरा बापू?' उन्होंने पूछा, मैंने तर्जनी उंगली आसमान की ओर उठायी. वे कुछ देर तक अबोले रहे. फिर ठंडे स्वर में बोले, 'तुम क्या करते हो?'

'पढ़ता हूं.'

'कौन–सी क्लास में?'

'टेन्थ में.'

'क्या सब्जेक्ट हैं?'

'साइंस, मेथ्स.'

उन्होंने हाथ मिलाया, शाबाशी दी, सॉरी बोले. फिर तो हम दोस्त बन गये. वे जब कुएं से स्नान करके आते तो मुझे आवाज़ देते, 'माधव, आज एक नया मुक्तक बना है, लो सुनो.' जवाहर जी मुक्तक और कविताएं बनाते. यह मेरे लिए बिलकुल नयी चीज़ थी. मैंने भी मुक्तक रचने की कोशिश की. परंतु मेरा शब्दकोष सीमित था. दिमाग़ पर ख़ूब जोर देने से भी तुकबंदी के लिए शब्द नहीं मिलते. अतः मैंने मुक्तक लिखना मुल्तवी कर दिया. बाद में जवाहर जी राधाकृष्ण प्रकाशन की घरेलू लाइब्रेरी योजना के सदस्य बने. डाक से क़िताबें आतीं. मुझे भी देते. इस तरह पाठ्यक्रम से बाहर की पुस्तकें पढ़ने के संस्कार पड़े. अब मैं अपने स्कूल के पुस्तकालय से पुस्तकें इश्यु करवाने लगा. ये भी कम पड़तीं. तो मैं जिला पुस्तकालय नाथद्वारा का सदस्य बन गया. यहां पुस्तकें ही पुस्तकें. हर प्रकार की हर विषय पर. पुस्तकालयाध्यक्ष विट्ठलजी बहुत भले मानुस. कई बार वे स्वयं पुस्तक ढूंढकर देते, लो इसे पढ़ना. प्रायः मैं ही अपनी पसंद की पुस्तक लाकर रज़िस्टर में दर्ज़ करवाने उनके पास ले जाता. वे तारीफ़ करते, बहुत अच्छी पुस्तक है. पुस्तकों के प्रति दीवानगी बढ़ती ही गयी. साढ़े बारह बजे स्कूल से छुट्टी होती. परंतु तब तक ज़िला पुस्तकालय बंद हो जाता. पुनः शाम को पांच बजे खुलता. मैं साइक्लिंग करता हुआ घर जाता, खाना खाता. स्कूल का कुछ होम वर्क करता और शाम को चार बजे फिर रवाना. मन पसंद क़िताब लेकर वापस बारह किलोमीटर की दौड़. दसवीं और ग्यारहवीं, इन दो वर्षों में मैंने लगभग दो सौ पुस्तकें पढ़

लीं. प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, अश्क, उग्र, भारतेंदु, जैनेंद्र, चतुरसेन शास्त्री, के. एम. मुंशी, धूमकेतु, गुरुदत्त, शिवानी, बांग्ला साहित्यकार शरतचंद्र, रवींद्रनाथ टैगोर, विमल मित्र, बंकिमचंद्र यहां तक कि गुलशन नंदा, प्रेम वाजपेयी, कुशवाह कांत, कर्नल रंजीत को भी नहीं छोड़ा. इनमें से अधिकतर ज़िला पुस्तकालय की अलमारियों में क़ैद रहते. मैं छुड़ाकर लाता और इनके साथ भरपूर समय बिताता. गांव में लाइटें नहीं थीं. रात को एक बजे तक चिमनी के धुएं युक्त मद्धम प्रकाश में क़िताब के पृष्ठों पर आंखें गड़ाये रहता. मां कहती अब सो जा बेटा. बेटा क़िताब पूरी होती तभी सोता. पाठ्यक्रम की पुस्तकें हो गयीं गौण और ये हो गयीं ख़ास.

ये तमाम पुस्तकें पढ़ते हुए मैंने जाना कि महान साहित्यकारों के मन में ग़रीब, शोषित, श्रमवीर, संघर्षशील जन के प्रति कितनी सहानुभूति है, कितनी आत्मीयता है. ये शब्द-शिल्पी मानव मन की गहराइयों की किस कुशलता से थाह लेते हैं, परिवेश पर इनकी पकड़ कितनी मज़बूत है, इनकी निरीक्षण क्षमता कितनी सूक्ष्म है. मैं इन्हें पढ़ते हुए कभी बरबस हंसने लगता, कभी भावुक हो उठता. कभी मन में आक्रोश घर कर जाता, कभी आंखें नम हो जातीं, कभी सब कुछ बदल डालने की इच्छा बलवती हो उठती तो कभी हृदय में प्रेम का अजस्र झरना बहने लगता. मैं शब्द की ताकत को प्रणाम करता. हर कृति पढ़ने के पश्चात लगता कि मैं वह नहीं रहा हूं जो पहले था. भीतर कुछ घटित हुआ सा लगता. मैं स्वयं को थोड़ा ऊपर उठा हुआ अनुभव करता. लगता कि दुनिया को देखने की मेरी दृष्टि में कुछ बदलाव आया है कि मैं पहले से अधिक समझदार, अधिक संवेदनशील हुआ हूं. साहित्य मुझे गढ़ रहा था और मैं इस गढ़न को महसूस कर पा रहा था. प्रायः सोचता कि काश मैं भी मानव मन का चितेरा होता, काश मैं भी मनुष्य के संघर्ष, उसकी जिजीविषा और आकांक्षाओं को शब्दों में ढाल सकता.

इसी दौरान एक और बात हुई. मेरे गांव के प्राथमिक विद्यालय में एक नये अध्यापक जी आये. नाम था ब्रजेश चंद्र पवार. उस ज़माने में डेली अप-डाउन की बुराई नहीं पनपी थी. ब्रजेश जी गांव में ही रहते. हमारा परिचय हुआ और शीघ्र ही परिचय अपनेपन में बदल गया. एक दिन मैंने देखा कि वे डेस्क पर कॉपी रखकर तन्मयता से कुछ लिख रहे हैं.

'आप इतने मगन होकर क्या लिख रहे हैं?' मुझसे रहा नहीं गया, पूछ बैठा.

'कहानी लिख रहा हूं.'

मेरा मुंह खुला का खुला रह गया. बोला, 'कहानियां तो बड़े-बड़े साहित्यकार लिखते हैं.'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है.' साधारण व्यक्ति भी कहानियां लिख सकता है. लिखते-लिखते ही वह बड़ा साहित्यकार बनता है.

ब्रजेशजी की यह बात मेरे मन में घर कर गयी. मैंने भी एक कहानी घसीटी और भगवती प्रसाद जी देवपुरा को बतायी. देवपुराजी हमें हिंदी विषय पढ़ाया करते थे. राष्ट्रभाषा के अनन्य प्रेमी, 'हिंदी लाओ, देश बचाओ' आंदोलन के प्रणेता. जहां जवाहरलाल नागोरी से मुझमें साहित्य के प्रति प्रेम जगा वहीं भगवती प्रसाद जी से मैंने राष्ट्रभाषा हिंदी का आदर करना सीखा. गुरूजी ने कहानी पढ़ी और ज्यों की त्यों विद्यालय की वार्षिक पत्रिका में छाप दी. मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा. मैं भी कहानीकार बन सकता हूं, मुझे स्वयं में छिपा एक बीज नज़र आया.

ग्यारहवीं में फ़र्स्ट डिवीज़न बना. अब आगे? यही सवाल मैंने मां से पूछा. मां ने अपने बांडे (गहना विहीन) हाथों पर एक उदास नज़र डाली और दीर्घ सांस भरकर बोली, 'तेरे पिताजी कहकर गये हैं कि छोरे को पढ़ाना. परंतु...'

मुझे 'परंतु' की थाह लग गयी. बोला, 'मां तू चिंता मत कर. मैं पिताजी की बात पार लगाऊंगा.'

नाथद्वारा की आईस फ़ैक्ट्री से मेरी उम्र के लड़के पीपेनुमा हरे-हरे थर्मस लेकर निकल रहे थे. थर्मस में कुल्फ़ियां. मैंने भी एक थर्मस साइकिल के कैरियर पर बांधा और निकल पड़ा आस-पास के गांवों में, 'ठंडोड़ी-मिठोड़ी कुल्फ़ी, लाल-गुलाबी कुल्फ़ी.' लगता कि गले में कुछ अटक गया है. आवाज़ ही नहीं निकल पा रही है. मन को बमुश्किल समझाया. भैया, इसमें लाज-शर्म की कोई बात नहीं है. मेहनत कर रहे हैं, चोरी नहीं.

मई-जून की दोपहर, ठाठिया साइकिल, टूटी चप्पलें, लू के थपेड़े, मन में आगे पढ़ने का हौसला. छुट्टियों-छुट्टियों में फ़ीस, क़िताबें, कपड़े जितने पैसे इकट्ठे कर लिये. अब मैं कॉलेज़ स्टूडेंट था. जीवन में पहली बार पैंट पहनी और

कॉलेज़ चल दिया. विषय वे ही. पढ़ाई बहुत मुश्किल. रात-दिन की मेहनत. प्रेमचंद, जैनेंद्र सब पीछे छूट गये.

बी. एससी. में भी प्रथम श्रेणी बनी. रसायन विज्ञान के हेड बालकृष्ण जी झंवर ने मुझे अपने चेंबर में बुलाया, 'माधव, अब क्या इरादा है?'

'सर, अब तो नौकरी करूंगा.'

'अभी नौकरी नहीं. आगे पढ़, केमिस्ट्री में एम. एससी. कर ले.'

'सर...' मैं इससे आगे नहीं बोल सका. वे समझ गये, मेरी परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित थे.

'अच्छा बता, कितने रुपये मासिक में काम चल जाएगा?'

'सौ रुपये में.' मन में एम. एससी. का लोभ जगा.

'ठीक है. मैं तुम्हें हर महीने सौ रुपये भेज दिया करूंगा. यह मत समझना कि एहसान कर रहा हूं.' नौकरी लगे तब वापस कर देना.'

इस तरह मैंने सन् १९७३ में उदयपुर विश्वविद्यालय से एम. एससी. कर ली. १९७४ में शादी और १९७६ में बी. एड., बी. एससी. तक लेखक बनने का सपना फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री, मैथ्स के बोझ तले दबा रहता है. विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के समीकरण इस सपने की स्टोइकियोमिट्री को असंतुलित कर देते हैं. बाद के बेरोज़गारी के दिन मुझे लेखन की शुरुआत के लिए एकदम मुफ़ीद लगे.

मैंने अपनी पहली कहानी 'शवयात्रा' लिखी. उस समय मेरा मन बंधु-बांधवों की असंवेदनशीलता के चलते वेदना से परिपूर्ण था. पंच-परमेश्वर के प्रति मोहभंग की सी स्थिति थी. दूसरी ओर देश में भीतर ही भीतर एक चिंगारी सुलग रही थी. युवा शक्ति आक्रोशित और मुखर थी. जगह-जगह युवाओं का रोष फूट रहा था. धरने, आंदोलन, धरपकड़, लोकतंत्र की पुनर्स्थापना की अदम्य चाह. 'शवयात्रा' का सरजू अनायास ही इस ग़ुस्से का प्रतीक बन गया. १९७६ में लिखी गयी यह कहानी प्रथम बार १९७७ में दिल्ली से निकलने वाले साप्ताहिक 'सेवाग्राम' में प्रकाशित हुई. पैंतीस रुपये पारिश्रमिक मिला और संपादक का पत्र भी कि आप इसी तरह ग्रामीण परिवेश की कहानियां भेजते रहें. बस, तभी से सिलसिला आरंभ हो गया.

नवंबर १९७६ में मेरी प्रथम नियुक्ति हुई महाकवि माघ की नगरी भीनमाल के हायर सैकंडरी स्कूल में रसायन विज्ञान व्याख्याता के पद पर. एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था कि देवेंद्र आया, मकान मालिक का पुत्र और मेरा विद्यार्थी. कुछ देर तक तो वह मुझे लिखते हुए देखता रहा, पास में रखे कुछ पृष्ठ पढ़े भी. फिर बोला, 'इस कमरे में जो भी आता है, लेखक होता है.'

'पहले कौन रहता था?' मैंने पूछा.

'स्वयंप्रकाश जी.'

मुझे सुखद आश्चर्य हुआ. स्वयंप्रकाश तब तक स्थापित हो चुके थे. मेरा तो आरंभ था. मैं ककहरा था तो स्वयंप्रकाश बारहखड़ी. मेरे मन में उनसे मिलने की इच्छा बलवती हो उठी. परंतु उनसे मिलना हो सका तब, जब मैं घूमते-घामते राजनगर (राजसमंद) जा पहुंचा.

राजनगर और कांकरोली दो जुड़वां क़स्बे. राजनगर की अपेक्षा कांकरोली की प्रसिद्धि अधिक. भक्तों में प्रभु द्वारकाधीश मंदिर तो साहित्यकारों में क़मर मेवाड़ी का एक विशेष स्थान. क़मर मेवाड़ी और 'संबोधन' मानो एक दूसरे के पर्याय. राजनगर में रहते हुए दो वर्ष से अधिक हो गये परंतु मैं क़मर मेवाड़ी से मिलने का साहस नहीं जुटा पाया. मेरी प्रकाशित कहानियों पर राजनगर का पता पढ़ते रहने के पश्चात क़मर मेवाड़ी जी ने ही पहल की. उन्होंने नरेंद्र कुमार शर्मा (अब नरेंद्र 'निर्मल') से कहा कि कभी माधव नागदा से मिलवाओ.

क़मर जी ने मुझे देखते ही गले लगा लिया मानो कोई बरसों बाद अपने बिछुड़े हुए मित्र से मिल रहा हो. झिझक का पर्दा तार-तार हो गया.

मेरे जीवन का यह एक नया मोड़ था. इसके डेढ़ वर्ष बाद ही १९८५ में मेवाड़ी जी ने अपने संबोधन प्रकाशन से मेरा प्रथम कहानी संग्रह 'उसका दर्द' प्रकाशित किया जो आगे चलकर राजस्थान साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हुआ. इसके बाद संबोधन प्रकाशन से मेरी दो और पुस्तकें आयीं. अगले वर्ष हमने राजस्थान साहित्यकार परिषद की स्थापना की जिसकी मासिक गोष्ठियां आज तक अनवरत जारी हैं. परिषद के ख़ास कार्यक्रमों में देश के नामचीन साहित्यकार शिरकत करते. उदयपुर से प्रकाश आतुर, नंद चतुर्वेदी, राजेंद्र मोहन भटनागर, महेंद्र भानावत, आलमशाह ख़ान तो प्रायः आते ही, वार्षिक समारोहों में राजेंद्र यादव, रमेश उपाध्याय, स्वयंप्रकाश, विष्णुचंद्र शर्मा, सूरज पालीवाल, हेतु भारद्वाज, वेदव्यास को भी बुलाया जाता और वे ज़रूर

आते. मेरे कहानी संग्रह 'उसका दर्द' का लोकार्पण तो विष्णुचंद्र जी ने ही किया था. व्यक्तिगत बातचीत में उन्होंने बताया कि आपकी कहानियां मुझे दिल्ली से खींचकर लायी हैं. यह मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था.

धीरे-धीरे मेरी दृष्टि का विस्तार होता गया. मैंने जाना कि साहित्य प्रतिष्ठा पाने का शॉर्टकट नहीं बल्कि एक गंभीर सामाजिक दायित्व है. जिस प्रकार किसान, मज़दूर, राजगीर, वास्तुविद या कारपेंटर चुपचाप अपना काम कर रहे हैं, बिना किसी इनाम-इकराम की लालसा के दुनिया को बेहतर बनाने में जुटे हैं, ठीक उसी प्रकार एक साहित्यकार भी अपना काम कर रहा है. वह इनसे अलग नहीं है, ऊपर नहीं है. जिस दिन साहित्यकार स्वयं को असाधारण या ऊंचा समझने लगेगा उसी दिन से उसका पराभव आरंभ हो जायेगा.

लाल मादड़ी,
नाथद्वारा - ३१३३०१(राज)
मो.: ९८२९५८८४९४

ग़ज़ल

सतपाल 'स्नेही'

तनहाइयों की भीड़ में खोती रही है ज़िंदगी,
ज़िंदगी का बोझ बस ढोती रही है ज़िंदगी.
बारहा धोखा हुआ है मुस्कुराने का मगर,
फिर नये अंदाज़ में रोती रही है ज़िंदगी.
प्यार से नफ़रत हुई तो नफ़रतों की आग पर,
ओढ़ कर ग़म का कफ़न सोती रही है ज़िंदगी.
मौत भी इससे किनारा कर निकलती-सी लगी,
दर्द ऐसे हर लम्हा बोती रही है ज़िंदगी.
डूबती-सी सांस में बीमार-सी धड़कन लिये,
वक़्त से पहले फ़ना होती रही है ज़िंदगी.

३६२, गली नं. ८, विवेकानंद नगर,
बहादुरगढ़-१२४५०७ (हरियाणा)
मो. : ९४१६५३५६३६

''जयपुर प्रीत की बांहों में''

देश के सबसे बड़े राज्य राजस्थान की राजधानी जयपुर में दर्ज़नों विश्वविद्यालय एवं सैकड़ों शिक्षण संस्थान हैं. यहां देश-विदेश से हज़ारों युवक-युवतियां पढ़ने व नौकरी करने के लिए आते हैं. निश्चय ही जिस शहर में उनकी १५ से ३० साल की उम्र बीतेगी वह उनकी ज़िंदगी के अहम किरदार भी रचेगा. हमें तलाश है युवाओं की ऐसी वास्तविक प्रेम कहानियों की जो जयपुर शहर में परवान चढ़ीं.

वे सफल प्रेम हों या असफल... उन्हें एक कहानी की शक्ल में हमें भेजिए. स्वीकृत कहानियां **''जयपुर प्रीत की बाहों में''** पुस्तक में प्रकाशित होंगी. प्रकाशित कहानियों पर एक-एक हज़ार रुपये मानदेय के साथ पुस्तक की पांच मानार्थ प्रतियां प्रदान की जायेंगी.

कहानियां सत्य घटनाओं पर आधारित हों, यद्यपि कल्पना का सहारा लिया जा सकता है. यदि आप चाहें तो किसी स्थापित कहानीकार से भी अपनी ज़िंदगी का सच लिखवा कर भेज सकते हैं किंतु ऐसे में रचनाकार की जगह उस कहानीकार का नाम अवश्य दें. पात्रों व स्थानों के नाम बदले जा सकते हैं.

कहानियां (२००० से २५०० शब्दों में) हस्तलिखित/टंकित ३० जून २०१७ तक इस पते पर भेजी जा सकती हैं : **प्रबोध कुमार गोविल, बी-३०१, मंगलम जागृति रेजीडेंसी, ४४७ कृपलानी मार्ग, आदर्श नगर, जयपुर-३०२००४ (राजस्थान).**

ईमेल : prabodhgovil@gmail.com. मो. ९४१४०२८९३८

गीत

– अखिलेश 'अंजुम'

आख़िर ये देश किसका है, ये किसका देश है !
इस देश की पूंजी में हिस्सेदार कौन है?
उपलब्धियों का असली दावेदार कौन है?

यह देश क्या उनका है जो फ़सलें उगा रहे !
और उनका, पसीने से जो रोटी कमा रहे !
उनका है जो सीमाओं पर जीवन गला रहे !
या उनका जो इस देश में दंगे करा रहे !
पहचानिए कि हम में दाग़दार कौन है??
उपलब्धियों का असली दावेदार कौन है??

क्या मेरा देश : लूटने वालों का देश है !
क्या संपदा को फूकने वालों का देश है !
जनता का ख़ून चूसने वालों का देश है !
या देश-हित में जूझने वालों का देश है !
हम-सब को सोचना है यह हम सबका देश है -
हम-सब में ग़लतियों का, जिम्मेदार कौन है?
उपलब्धियों का असली दावेदार कौन है?

सोचें, कि आमजन यहां क्योंकर उदास है !
क्यों देश की 'जनता' यहां खाली गिलास है !
जनतंत्र में यह देश का कैसा विकास है?
जड़-सींचने वालों का फटा क्यों लिबास हैं?
पहचानिए कि हम में गुनहगार कौन है?
उपलब्धियों का असली दावेदार कौन है?
इस देश की पूंजी में हिस्सेदार कौन है?

('कथाबिंब' के अक्तूबर-दिसंबर २०१६ अंक के संपादकीय से प्रेरित होकर).

२-झ-४ दादाबाड़ी, कोटा-३२४००९ (राजस्थान). मो.: ९४६०३९०५८९

एनी बेसंट : सूर्यधर्मी अग्निधर्मी वीरांगना

✍ डॉ. राजम पिल्लै

Oh! Hidden Life Vibrant in every atom,
Oh! Hidden Light shining in every creature
Oh! Hidden Love embracing all in oneness,
May each who feels himself as one with Thee,
Know he is therefore one with every other!'
'ओ! गुप्त प्राण, जो प्रकंपमान है, प्रति परमाणु में,
ओ! गुप्त प्रकाश, जो प्रभासमान है, प्रति जीव में,
ओ! गुप्त प्रेम, जो आलिंगनबद्ध करता सभी को एकत्व में,
आपके साथ जो एकात्मता अनुभूत करता है, वह
जान ले कि इसलिए वह एक है अन्य हर एक के साथ!'

– डॉ. एनी बेसंट

यह है 'युनिवर्सल प्रेयर' — 'विश्व-प्रार्थना' जो लगभग सन १९२३ में अक्षरबद्ध की गयी श्रीमती एनी बेसंट द्वारा! एनी बेसंट जिनकी पूरी जीवन यात्रा थी — अंधेरे से रोशनी की ओर, असद् से सद् की ओर, मृत्युबोध से मुक्तिबोध की ओर! अद्‌भुत, अविश्वसनीय, रोमहर्षक, अनवरत यात्रा — एक ऐसे सत्यान्वेषी की जो ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, स्वयं अपनी यात्रा का मानचित्र बनाता गया, जब-जब अंधेरे से घिरा स्वयं मार्गदर्शक स्वयंप्रकाश नक्षत्र बनता गया, जब-जब विरोध प्रतिकार के चक्रव्यूह में फंसा स्वयं अपने स्फटिक सम पारदर्शी व्यक्तित्व और समदर्शी विवेक शक्ति से बाहर निकलता गया और मजबूर करता रहा कि उसे पत्थर मारने आये लोग गुलदस्ता पेश करें और दशकों बाद भी मूल्यांकनकर्ता यही कहें कि 'एनी बेसंट एक औरत नहीं 'व्यक्ति' थीं, व्यक्ति से बढ़कर चेतना थीं — सूर्यधर्मी, अग्निधर्मी चेतना!'

खंड-खंड प्रवहमान अखंड जीवन :

और, चेतना (*Spirit*) — को न कालबद्ध किया जा सकता है, न ही स्थानबद्ध. मानव-निर्मित भौगोलिक सरहदें, सांचाबंद वैचारिक संकीर्णताएं, यहां तक कि शरीर की, देह की अवस्थिति या अवसान भी चेतना के संतरण में बाधा नहीं बनती. एनी बेसंट का समग्र भौतिक जीवन एक के बाद एक जैसे अनेक पुनर्जन्मों की कथा है; कायाकल्प का करिश्मा है. अविश्वसनीय रूप से वायवी, अतींद्रिय अनुभूति-भरा पर साथ ही बेहद ठोस, कड़ी-खुरदरी ज़मीन पर पांव रोपकर खड़ा कर्म-योग!

पहले, ईसाई क्रूसेडरों का-सा धार्मिक शहादत का जुनून, फिर तीव्र अनास्था लगभग नास्तिकता के कगार तक धकेलनेवाली, फिर गहन सामाजिक-मानवीय सरोकार दमितों–शोषितों मज़दूरों के साथ, फिर जैसे अचानक यू–टर्न लेकर संपूर्ण ज्ञात-अज्ञात ब्रह्मांडों को भेदनेवाले अतींद्रिय परा-विद्या से जुड़े थियोसॉफ़ी दर्शन और संगठन की विश्वस्तरीय प्रवक्ता! एक पुरा-गाथा-सी है एनी-बेसंट की जीवन-कथा!

इंग्लिश नहीं आयरिश !

एनी वुड का जन्म १ अक्तूबर, १८४७ को लंदन में हुआ. पिता डॉ. वुड आधे आयरिश थे, आधे इंग्लिश और मां थीं पूरी आयरिश. एनी का जन्म इंग्लैंड में हुआ लेकिन अपनी आत्मकथा 'एनी बेसंट : एन ऑटोबायोग्राफ़ी' में वे ज़ोर देकर कहती हैं कि, 'मैंने अपने को हमेशा इंग्लिश नहीं, आयरिश माना है.' आयरलैंड, ब्रिटिश, द्वीप समूह का ही हिस्सा था लेकिन वह अपनी स्वतंत्र, स्वायत्त सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत की रक्षा भी करना चाहता था, इसलिए वहां 'होम रूल आंदोलन', प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वर्षों से चलता रहा. एनी बेसंट ने दशकों बाद जब 'भारत वर्ष' को अपनी मातृभूमि माना तो उसको भी 'होम-रूल' दिलवाने के लिए 'होम–रूल लीग' की स्थापना करने

और होम रूल आंदोलन का प्रवर्तन करनेवालों में वे अग्रस्थान पर थीं.

पांच वर्ष की उम्र में एनी के पिता का देहावसान हुआ और सुसंस्कृत, मध्यमवर्गीय वुड परिवार पर जैसे वज्रपात हो गया. एनी की मां गहन आस्थावान, संस्कारशील और कर्मठ स्त्री थी. उन्होंने परिवार की आर्थिक स्थिति को संभालने के लिए घर में छात्रावास-सा खोल दिया और एनी को अपनी एक संपन्न, सहृदय सहेली के यहां भेज दिया. बालिका-किशोरी एनी को उनके यहां कड़े अनुशासन के बीच विभिन्न युरोपीय भाषाओं का परिचय मिला, ईसाई धर्म के दर्शन, सिद्धांत और मिशनरी कर्तव्यों की जानकारी मिली. अपनी प्रतिभा को निरंतर ज्ञान-संपन्न बनाने का प्रशिक्षण भी एनी को यहीं मिला!

डॉ. राजम पिल्लै

एनी प्रखर प्रतिभा-संपन्न थी, धर्म के लिए, विश्व-कल्याण के लिए आत्मसमर्पण करने की तीव्र अभिलाषा से आपूरित थी. वह स्वयं 'नन' नहीं बन सकती थी और शायद इसीलिए उसने लगभग २० वर्ष की उम्र में धर्म-कार्य से जुड़े पादरी रेवरंड फ्रैंक बेसंट से विवाह किया सन १८६७ में.

त्रासद वैवाहिक जीवन :

एनी बेसंट, जैसे पहली बार ज़मीनी सचाई से रू-ब-रू हुई. गृहस्थी के नियम, अनुशासन के बीच एनी की धार्मिक-आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का कोई समाधान मिल नहीं सकता था. इस बीच एनी बेसंट दो बच्चों — एक बेटे और एक बेटी की मां बन गयी पर मन-मस्तिष्क की छटपटाहट ज़ारी रही. वह नास्तिक नहीं थी लेकिन अपनी आस्था को दृढ़ बनाने के लिए संदेहों का निवारण करना चाहती थी, सवालों के जवाब चाहती थी. उसकी प्रश्नाकुलता की परिसीमा तब आ गयी जब उसकी बेटी बुरी तरह बीमार पड़ गयी, तकलीफ़ से छटपटाने लगी और एनी की प्रार्थना, दुहाई जैसे परमात्मा अनसुनी करता रहा. उसके बाद से एनी ने पति के चर्च के विधि-विधानों में शामिल होने से इंकार कर दिया. अपने प्रश्नों के उत्तर वह ग्रंथों में ढूंढने लगी; वरिष्ठ धर्मवेत्ताओं से संपर्क करने लगी.

विवाह से पहले ही संयोग से एनी का संपर्क आयरलैंड के सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों से, उनके प्रखर, जुझारू नेताओं से हुआ था. वैवाहिक जीवन के असंतोष और अपनी आंतरिक छटपटाहट से जैसे थोड़ी-सी राहत पाने के लिए एनी बेसंट ने क़लम उठायी और धीरे-धीरे वक्तृत्व में भी प्रवीणता हासिल की.

विवाह को टूटना था, वह टूट गया. एनी को चुनाव करना था — या तो 'धार्मिक कर्मकांडों में पति का साथ दो या घर से निकल जाओ.' बच्चों की ममता ने उसे इतने दिन बांधे रखा था; एक दिन उससे भी वह वंचित कर दी गयी. मुक़दमे के दौरान एनी ने अधिकांशत: ख़ुद अपनी पैरवी की लेकिन वह हारती गयी और एक दिन समाज, क़ानून, धर्म की नज़र में गुनहगार साबित होकर वह अकेली हो गयी और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए बड़ी तीव्रता के साथ सामाजिक कार्यों में जुट गयी.

समाजवादी, यूनियनवादी, आंदोलनकारी एनी :

एनी बेसंट का बहुआयामी सार्वजनिक जीवन अब प्रारंभ हुआ. वे नेशनल सेक्यूलर सोसाइटी (एन एस एस) की प्रमुख प्रवक्ता बनीं, चार्ल्स ब्रेडला उनके महत्वपूर्ण सहयोगी बने. एनी लंदन मैच गर्ल्स (दियासलाई बनानेवाली लड़कियां) की हड़ताल में प्रवक्ता के रूप में शरीक हुई. वे समाजवादी फ़ेबियन सोसाइटी और मार्क्सिस्ट सोशल डेमोक्रेटिक फ़ेडरेशन की प्रमुख वक्ताओं में रहीं. इसी दौरान उन्होंने शैक्षिक उपाधियां भी अर्जित कीं.

ऐसी प्रखर लेखिका और वक्ता, समाजवादी सिद्धांत की पैरोकार एनी बेसंट का जीवन प्रवाह कुछ वर्षों के भीतर ही एक पूर्णतया नयी दिशा में मुड़नेवाला था, इसका पूर्वानुमान कोई नहीं लगा सकता था. क्या एनी का अंतरमन, इसे जानता था?

मैडम एच. पी. ब्लावेट्स्की की पट्टशिष्या, एनी बेसंट :

एनी बेसंट, इन सब हलचलों, आंदोलनों के बीच भी लगातार यह महसूस करती रहीं कि वर्तमान केवल एक पड़ाव है, निश्चित ही गंतव्य-स्थान कहीं और है, भले ही इस समय वह दृश्यमान न हो पर तूफ़ान से शांति की ओर जाने का जैसे संकेत उन्हें मिलने लगा था. संयोग से (क्या सचमुच?) उनके एक संपादक मित्र ने एक जटिल-सा, भारी ग्रंथ — 'सीक्रेट डॉक्टरिन' (२ खंड) उन्हें थमाया और उसकी समीक्षा लिखने के लिए कहा. ग्रंथ लिखा था -

'मैडम हेलेना पेत्रोवना ब्लावेटस्की' (सन १८३१-१८९१) ने. वे एक रूसी पराविद्याशास्त्री, अतीप्रियज्ञानी और 'मीडियम' थीं और उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने के लिए सन १८७५ में न्यूयॉर्क में कर्नल अल्काट के सहयोग से थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की स्थापना की थी. कुछ मुलाक़ातों, गहन चिंतन और द्रुत निर्णय के बाद एनी बेसंट ने थियोसाफ़िकल सोसाइटी की सदस्यता ग्रहण कर ली.

१० मई १८८९ था वह दिन और ८ मई, १८९१ में मैडम ब्लावेट्स्की के देहांत होने तक एनी बेसंट उनकी पट्ट शिष्या हो चुकी थीं. एनी बेसंट को अपने आजीवन तलाश का एक सुफल मिला और थियोसॉफ़िकल सोसाइटी को एक अपूर्व प्रवक्ता, संदेशवाहक और वैश्विक प्रतिनिधि!

'मातृभूमि' – भारतवर्ष में एनी बेसंट का आगमन :

१६ नवंबर, सन १८९३ को मद्रास प्रेसिडेंसी के तूतिकोरिन बंदरगाह पर आये ज़हाज में थीं भारत की 'आध्यात्मिक पुत्री'- एनी बेसंट. हिंदुस्तान का ऐतिहासिक गौरव, आध्यात्मिक गुरूत्व उन्हें अपनी थाती-सा लगता था और फिर वे जुट गयीं भारत को फिर एक बार महिमामय, विश्व-गुरू का स्थान दिलाने के महती कार्य में. सन १९०७ में थियोसॉफ़िकल सोसाइटी के प्रथम अध्यक्ष कर्नल अल्काट के देहांत के बाद एकमत से एनी बेसंट को अध्यक्ष चुना गया, वे सन १९३३ तक अध्यक्ष रहीं. मद्रास के अडयार परिसर में मैडम ब्लावेट्स्की तथा कर्नल अल्काट ने सन १८८६ में थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की स्थापना की थी और एनी बेसंट ने सन १८९३ में अपने भारत-आगमन से लेकर २० मई सन १९३३ को अडयार, मद्रास में ही अपने देहावसान तक इस स्थान को ही अपना मुख्य कार्य केंद्र बनाया था.

वाग्मी, विदुषी, वीरांगना : एनी बेसंट

अपनी आयु के ४० से अधिक वर्ष एनी बेसंट ने सनातन भारतीय गरिमा तथा महिमा के पुनरुत्थान तथा भारतीय जनों के बौद्धिक, मानसिक पुनर्जागरण के लिए समर्पित किये. भारत के ज्ञात इतिहास में वाग्मिता, विद्वत्ता तथा कर्मठता का ऐसा अदभुत संगम एक ही व्यक्ति में निश्चित ही नहीं मिलता. ब्रिटिश साम्राज्य के शासनकाल में एक इंग्लिश/आयरिश महिला साम्राज्य के एक उपनिवेश के निवासियों को झकझोरकर कहे, ''तुम ग़ुलाम बने रहने के लिए सृजित नहीं हुए हो, तंद्रा से बाहर निकलो और गुलामी का जुआ उतार फेंको; तुम्हें स्वशासन का अधिकार है; संवैधानिक तरीक़े से उस अधिकार को अर्जित करो.'' यह एक जांबाज़ वीरांगना ही कर सकती है, और जीवन के अंतिम क्षण तक एनी बेसंट अपने मिशन को लक्ष्य में रखकर पत्र-पत्रिकाओं, संगठनों, आंदोलनों के माध्यम से इस मोर्चे पर जूझती रहीं तो यही कहा जा सकता है कि एक वीरांगना ने वीर-गति पायी.

एनी बेसंट का लेखन और वक्तृत्व कार्य अविश्वसनीय रूप से विपुल था — उनका केंद्रीय विषय था मानव-कल्याण, आत्मा का उत्थान और अपनी 'मातृभूमि' भारत के प्राचीन ऐतिहासिक गौरव का स्मरण स्वयं भारतवासियों को दिलाना और विदेशियों को सचेत करना कि वे अपने अहंकार के मद में भारत की महानता और संभावनाओं को नज़रअंदाज़ न करें. उनके द्वारा प्रकाशित बुलेटिनों, पुस्तक-पुस्तिकाओं, ग्रंथों की संख्या सैकड़ों में गिनी जा सकती है.

एनी बेसंट ने यूरोप के लगभग सभी देशों, संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि की अनेक बार यात्राएं की थीं — व्याख्यानों के लिए और संस्थाओं के गठन के लिए. उनकी धाराप्रवाह भाषा-शैली, तेजस्वी व्यक्तित्व और लक्ष्योन्मुखी कर्मठता सामान्य से लेकर संभ्रात समुदाय के श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी. उनके व्याख्यानों की संख्या हज़ारों में गिनी जा सकती है.

एनी बेसंट में अपूर्व संगठन क्षमता थी. उन्होंने भारतीय युवकों में राष्ट्र-सेवा और राष्ट्राभिमान जगाने के लिए बनारस में सेंट्रल हिंदू कॉलेज़ की स्थापना सन १८९८ में की जो बाद में पं. मदन मोहन मालवीय की कर्मठता से स्थापित बनारस हिंदू युनिवर्सिटी के साथ समायोजित किया गया.

एनी बेसंट ने सन १९१४ में 'कॉमनवील' नामक साप्ताहिक का प्रकाश शुरू किया और बाद में 'न्यू इंडिया' नामक दैनिक अख़बार भी निकाला. ये अख़बार एनी बेसंट के भारत-प्रेम और स्वाधीनता की अदम्य प्यास को मुखर रूप से व्यक्त करते थे सो ब्रिटिश सरकार ने प्रेस एक्ट के तहत उनके प्रकाशन पर पाबंदी लगा दी, एनी बेसंट को कारावास की सज़ा भी दी गयी लेकिन भारत की जनता और नेता, एनी बेसंट के इतने प्रशंसक थे कि सरकार को दबाव में आकर एनी बेसंट को रिहा करना पड़ा.

हतशिर सही, पर नत शिर नहीं !

एनी बेसंट का भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का चार्ट उच्चतम सफलता और फिर एकदम नीचे न्यूनतम स्वीकार्यता का है. सन १९१६ में आयरलैंड के 'होम रूल

आंदोलन' से प्रेरणा लेकर एनी बेसंट ने भारत में भी होम रूल लीग की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया और तत्कालीन अनेक महत्वपूर्ण भारतीय राजनेताओं और विचारक जैसे लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, सर सुब्रह्मण्य ऐयर, मुहम्मद अली जिन्ना आदि ने उसमें सक्रिय सहयोग दिया. भारत के अनेक भागों में और अमेरिका में भी लीग की गतिविधियां फैलती गयीं. 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं उसे लेकर रहूंगा.' यह संकल्प वाक्य था लोकमान्य तिलक का और यही केंद्रीय लक्ष्य था होम रूल लीग और आंदोलन का और वे ब्रिटिश साम्राज्य से संबंध-विच्छेद न करते हुए भारत को इंग्लैंड के समकक्ष डोमिनियन स्टेटस देने की मांग कर रहे थे. उनकी सारी कार्यवाही संवैधानिक अनुशासन को मान्य करते हुए की जाती थी.

सन १९२० के बाद 'गांधी की आंधी' ने आज़ादी की लड़ाई का पूरा नक़्शा, पूरी रणनीति ही बदल दी. मोहनदास करमचंद गांधी को दक्षिण अफ्रीका में सरकार की रंगभेद नीति के खिलाफ़ 'सत्याग्रह' आंदोलन चलाने में ऐतिहासिक कामयाबी मिली थी. वहां उनके सिपाही थे. ग़रीब गिरमिटिया मज़दूर, छोटे-छोटे व्यापारी, थोड़े-से बुद्धिजीवी. भारत में भी गांधीजी ने बिहार के चंपारण और गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों को सरकार के खिलाफ़ सत्याग्रह आंदोलन में भागीदार बनाया था. अब राष्ट्र की स्वतंत्रता के आंदोलन की बागडोर संभ्रात सफ़ेदपोश व्यक्तियों के हाथों से निकलकर 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' करनेवाले गांधीजी के हाथ में आ गयी थी. जनता उन्हें 'बापू' कहती थी, 'महात्मा' मानती थी.

एनी बेसंट ने स्वयं ही कभी सरकार के विरोध में प्रखर आवाज़ उठायी थी लेकिन देश में कॉलेज़ों, अदालतों, दफ़्तरों में पढ़ने — काम करनेवाले व्यक्तियों को 'अवज्ञा' का आदेश-निर्देश देना उन्हें सरासर भूल लगती थी. भावी भारत में अनुशासनहीनता और 'भीड़-तंत्र' की नींव डालने वाला गुनाह लगता था. रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे विचारकों, शिक्षाविदों ने भी इसके ख़तरों से गांधीजी को आगाह किया था, पर आंधी चल पड़ी थी सो बड़े-बड़े लोग 'मुश्ते गुबार' बनकर रह गये. एनी बेसंट की लोकप्रियता रातों-रात लुप्त हो गयी. बड़ी विडंबनामय स्थिति थी — सरकार उन्हें 'राजद्रोही' मानती थी और जनता उन्हें 'ब्रिटिश एज़ेंट'. उनका व्यक्तिगत, सार्वजनिक हर स्तर पर अपमान, तिरस्कार किया जाने लगा. सन १९१७ में वे अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष चुनी गयी थीं, इस ऐतिहासिक तथ्य को भी भुला दिया गया. लेकिन एनी बेसंट ने भारत नहीं छोड़ा, अपना मिशन नहीं त्यागा. उन्होंने अपने विश्वासों के खिलाफ़ जाकर, मौक़ापरस्त होकर समझौता कभी नहीं किया. थियोसाफ़ी दर्शन उनका जीवन-मूल्य था, केवल बौद्धिक सिद्धांत नहीं. 'सत्य का अन्वेषण' उनका जीवन-मिशन था. उन्होंने कहा :

'सत्य सोचो, सत्य बोलो, सत्य आचरण करो. केवल तभी तुम्हें वह शक्ति प्राप्त होगी जिससे तुम 'सत्य' को क्षण-भर में सहज अंतर्बोध से पहचान लोगे! और सहज बोध तर्कातीत होता है.'

आयरलैंड/इंग्लैंड से अडयार तक की जीवन-यात्रा में एनी बेसंट का पूरा व्यक्तित्व इन शब्दों में समेटा जा सकता है — *सूर्यधर्मी अग्निधर्मी वीरांगना !*

२० सितंबर, १९३३ को ८५ वर्ष की उम्र में अडयार मद्रास प्रेसिडेंसी में एनी बेसंट का देहांत हुआ और उनके पूर्व निर्देश के अनुसार उनका दाह संस्कार किया गया. उनके निकट सहयोगी डॉ. भगवानदास के सुपुत्र श्री श्रीप्रकाश ने 'एनी बेसंट : स्त्री और नेता के रूप में' शीर्षक अपनी पुस्तक में दर्ज़ किया है कि एनी बेसंट ने कभी किसी से यह इच्छा प्रकट की थी कि उनका दाह संस्कार बनारस के घाट पर हो और डॉ. भगवानदास यह कर सकते तो अच्छा होता. पर उनकी मृत्यु तो अडयार में हुई, तो वह इच्छा पूरी नहीं की जा सकी.

डॉ. भगवानदास ने एनी बेसंट के दाह-संस्कार के बाद संचित राख के एक कलश को गंगा के जलों में प्रवाहित किया, उसी श्रद्धा और अवसाद के साथ जैसे अपने परिजनों का किया जाता है.

एनी बेसंट पर लिखी गयी हर जीवनी अधूरी है और अधूरी ही रहेगी जब तक उनकी ही तरह का कोई प्रज्ञावान, प्रतिभा संपन्न मनीषी, वैश्विक कल्याण के उनके अधूरे स्वप्न को साकार करने की तीव्र आकांक्षा से क़लम नहीं उठाता.

६०१—ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.: ९८२०२२९५६५.
ई-मेल : *pillai.rajam@gmail.com*

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते

✍ डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

हमारा संस्थान एक चिकित्सीय साइक्लोट्रॉन की स्थापना कर रहा है. यहां मुख्यतया कैंसर की जांच पड़ताल एवं उसके उपचार के लिए उपयोगी रेडियोधर्मी समस्थानिकों (रेडियोएक्टिव आइसोटोप्स) का उत्पादन किया जायेगा. मैं उसके लिए बनाये जा रहे भवन के दरवाज़े पर एक संगमरमर का फलक लगवाना चाहता हूं, जहां उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालने वाला कोई वाक्य या उद्धरण दिया जा सके.

काफ़ी सोचने के बाद मैंने यह सुझाव दिया कि निम्नलिखित श्लोक उसके लिए बिल्कुल उचित रहेगा :

न त्वहम् कामये राज्यम् न स्वर्गम न अपुनर्भवम ।
कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनाम आर्त नाशनम् ।।

अर्थात 'न तो मुझे राज्य चाहिए, न स्वर्ग, और न मोक्ष. मैं मात्र यह चाहता हूं कि दुख से पीड़ित लोगों के कष्टों का नाश हो!' यह उद्धरण सबों को पसंद आया. कुछ वरिष्ठ अधिकारियों की भी राय ली गयी, उन्होंने भी इससे सहमति जतायी.

अब इसके प्रसंग और संदर्भ की खोज शुरू हुई. क्योंकि मैं चाहता था कि सही संदर्भ दिया जा सके. बहुतों ने बताया कि यह महाभारत के 'द्रोण पर्व' से लिया गया है और महाराज रन्ति देव की कामना व्यक्त करता है. रन्ति देव का त्याग सबों को याद था. अतः बात मान ली गयी. फिर किसी ने बताया कि यह श्लोक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रों के परिचय पत्र पर छपा होता है और संभवतया उस विश्वविद्यालय का सिद्धांत (Motto) है. फिर किसी ने लोक सभा के किसी सम्मेलन कक्ष में इस श्लोक के लिखे होने की बात बतायी. मैंने एक दो संस्कृत के विद्वानों से भी पूछा. उन्होंने भी यही बात बतायी. अतः मैंने महाभारत में खोजना चाहा. हां वहां 'द्रोण पर्व' में रन्ति देव की कथा का उल्लेख है और उनकी दानवीरता का विस्तृत उल्लेख है, और साथ ही यह टिप्पणी भी कि ऐसे दानी महाराजा भी जीवित न रहे (महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर). पर यह श्लोक उसमें नहीं है.

अब फिर खोज शुरू हुई. थोड़ा भटकने पर एक जज साहब का अंग्रेज़ी में आलेख मिला, जिसमें उपरोक्त श्लोक उद्धृत किया गया था. लेकिन कोई संदर्भ नहीं दिया गया था. साथ ही में श्रीमद्भागवत (९.२१.१२) का एक श्लोक उद्धृत किया गया था. मुझे वह श्लोक श्रीमद्भागवत के नवें स्कंध में मिला.

रेडिएशन मेडिसिन सेंटर (वी. ई. सी. सी.), कोलकाता. (कलाकृति)

न कामयेहं गतिमीश्वरात्
परामष्टर्द्धि युक्ताम पुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽ खिलदेह भाजामन्तः
स्थितो येन भवन्त्यु दुःखाः ।।

अर्थात् 'मैं भगवान से आठों सिद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता. और तो क्या, मैं मोक्ष की कामना नहीं करता. मैं चाहता हूं तो केवल यही कि मैं संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हो जाऊं और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूं, जिससे उन्हें कोई कष्ट न हो.'

यह श्लोक दुःखों के नाश की बात नहीं करता, बल्कि सबका दुःख अपने ऊपर लेने की बात करता है, जैसे कि हमारे गांवों में महिलाएं बच्चों की बलैय्या लेती हैं.

अब इंटरनेट पहले श्लोक से भरा पड़ा है. सब इसे उद्धृत करते हैं, पर यह है कहां से? कुछ लोगों ने यह राय दी कि शायद महामना पंडित मदन मोहन ने श्रीमद्भागवत के उपरोक्त श्लोक के आधार पर इसकी रचना की हो. पर इस बात की भी पुष्टि न हो सकी.

इस बीच मेरे मित्रों ने मुझे रूमी की कुछ कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद भेंट में दिया. अनुवाद कोलमैन बार्क्स द्वारा किया गया था. उसकी भूमिका अति सुंदर एवं विवेचना पूर्ण है. उसमें शेख सादी के एक फ़ारसी शेर का जिक्र किया गया है, जो कि न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र भवन में अंकित है. भाव कुछ इस प्रकार हैं :

'समस्त मानव जाति की उत्पत्ति एक ही स्रोत से हुई है. हम सब एक ही परिवार के लोग हैं. अगर शरीर के किसी भी हिस्से में चोट लगती है, तो शरीर के सभी अंगों में पीड़ा होती है और सारा शरीर पीड़ा से तड़प उठता है. अगर आप को दूसरों की पीड़ा से कष्ट नहीं होता है, तो फिर आप मानव नहीं हैं.'

मैंने शेख सादी के विषय में सुना था और उनकी कुछ रचनाएं भी इधर-उधर पढ़ी थीं. इस ख़ूबसूरत सूक्ति ने मुझे उनके विषय में फिर से पढ़ने को प्रेरित किया. उनकी अनेकों सूक्तियां प्रसिद्ध हैं और जीवन को सुचारु ढंग से जीने का मार्ग दिखाती हैं. खोजते-खोजते एक दिन मैंने गूगल पर टाइप किया 'शेख सादी कोट्स इन हिंदी'. मुझे आश्चर्य हुआ कि उनके नाम से एक सूक्ति हिंदी में दी गयी है :

'मैं न राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग चाहता हूं, और न मोक्ष ही चाहता हूं. मैं दुःखी, पीड़ित प्राणियों के दुःख का नाश चाहता हूं.'

मैं आश्चर्यचकित रह गया क्योंकि यह तो पहले श्लोक का सटीक अनुवाद है. मैं फ़ारसी नहीं जानता. कुछ लोगों से पूछा और वे भी सादी से ज़्यादा परिचित न थे. कुछ लोगों को मैंने पत्र लिखे कि वे इसके मूल फ़ारसी शेर का पता लगायें, उनके उत्तर की प्रतीक्षा है.

इस बीच मेरे मन में एक संशय भी उठा जिसका समाधान मेरे पास नहीं है. माना जाता है कि शेख सादी काफ़ी घुमक्कड़ थे और हिंदुस्तान भी आये थे. रूमी और सादी की रचनाओं में गाहे-बगाहे हिंदुस्तान का जिक्र आता रहता है. क्या उन्होंने किसी संस्कृत की सूक्ति का अनुवाद किया है. या फिर संस्कृत के पंडितों ने फ़ारसी से अनुवाद किया है?

एक बात और... शेख सादी इस्लाम धर्म को मानने वाले थे. इस्लाम में पुनर्जन्म एवं मोक्ष की परिकल्पना नहीं है. तो फिर?

अब मैं वह बात कहने जा रहा हूं जो कि मुझे आरंभ में ही कहनी चाहिए थी. मेरा संस्कृत का ज्ञान अत्यंत सीमित है. संस्कृत साहित्य मैंने हिंदी अनुवादों की सहायता से ही पढ़ा है. पर मैं इस साहित्य की गहनता, शब्द सौष्ठव, लालित्य एवं गेयता का प्रेमी हूं.

मैं इस टिप्पणी के जरिये 'कथाबिंब' के सुधी पाठकों से यह आग्रह करूंगा कि इस श्लोक और शेख सादी की उपरोक्त सूक्ति का विश्वसनीय स्रोत बतायें.

क्योंकि यह श्लोक बार-बार लगातार तमाम अवसरों पर उद्धृत किया जाता है.

- भूतपूर्व निदेशक,
वी.ई.सी.सी., कोलकाता
ईमेल - srivastav.dinesh.kumar@gmail.com

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

डॉ. सतीश दुबे

✍ रमेश मनोहरा

डॉ. सतीश दुबे से मेरा प्रथम परिचय १९७७ में इंदौर की एक काव्य गोष्टी के दौरान हुआ था. बात बहुत पुरानी है. मगर उनका नाम भूल नहीं पाया क्योंकि जब-जब उनकी कहानियां, लघुकथाएं देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ता था तब उनका नाम कभी स्मृति से नहीं गया. इस बात को काफ़ी साल बीत गये. पत्रों का सिलसिला एक अच्छा माध्यम था. वे मेरी कहानियों की प्रशंसा भी करते थे और बड़ी तरक़ीब से आलोचना भी. मेरा जब भी कोई नया कहानी संग्रह प्रकाशित होता उसे अवश्य उन तक पहुंचा देता था. वे एकाग्र मन से पढ़कर उस संग्रह पर अपनी बेबाक टिप्पणी अवश्य लिखते थे. मेरा नाम उनकी स्मृति से कभी ग़ायब नहीं हुआ था. जब भी अपनी बिटिया के पास नीमच जाते थे, उन्हें जावरा होकर ही जाना पड़ता था. तब उनके होठों पर दिनकर सोनवलकर, सतीश क्षोत्रिय और मेरा नाम रहा करता था. तब अवश्य उन्हें मेरी याद आती थी. मगर प्रत्यक्ष मुलाक़ात कभी नहीं हुई थी.

मुंबई से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका ''कथाबिंब'' में सतीश दुबे जी की कहानियां/लघुकथाएं अक्सर प्रकाशित होती रहती थीं. कभी-कभी मेरी लघुकथाएं, कविताएं भी प्रकाशित होती थीं. उन दिनों 'कथाबिंब' में आपका इंटरव्यू प्रकाशित हुआ. आपने उसमें बताया - 'मैं फिलहाल व्हील चेयर पर हूं फिर भी मेरे लेखन की सक्रियता को देखकर मुझसे मेरे दुश्मन ईर्ष्या करते हैं.' तब मुझे पता चला कि आप व्हील चेयर पर रहकर भी सक्रियता से लेखन कार्य कर रहे हैं. मैंने सहानुभूति पत्र लिखा कि मुझे पहली बार पता चला कि आप व्हील चेयर पर हैं. यह बात लगभग २०१० के आसपास की होगी. तबसे आपसे मिलने की जिज्ञासा मेरे मन में प्रबल हो गयी थी. मगर इसी बीच कई बार इंदौर आने के बाद भी मिलना न हो सका. आप भी इंदौर आने पर मिलने का आग्रह बार-बार करते रहे मगर इंदौर महानगर होने के कारण मैं जिस इलाक़े में रुकता था १०-११ किलोमीटर दूर रहता था. अत: जाना न होता था. इसी बीच द्वारकापुरी मोहल्ले में जाने का अवसर मिला यह सोचकर कि वहां जाकर डॉ. सतीश दुबे जी से अवश्य मिलूंगा फ़ोन करके आने की सूचना दी. उन्होंने कहा ससुराल शादी में जा रहा हूं अत: नहीं मिल पाऊंगा, उस दिन मिलना न हुआ. मगर मुझे उनसे मिलने की प्रबल इच्छा थी. तब अवसर आया, वह दिन था २६ जनवरी २०१६ जिस इलाके में ठहरा था. वह वहां से १० किलोमीटर दूर था. एक सामाजिक कार्यक्रम में मुझे वहीं जाना भी था. परंतु मैं उनका मोबाइल नंबर नहीं ला पाया. तब मैंने आदरणीय प्रताप सिंह सोढी जी को फ़ोन किया, उनसे फ़ोन नंबर लिया. उनको लगाया, उनकी श्रीमती ने उठाया. बताया स्नान कर रहे हैं. मैंने अपना नाम बताकर एक बजे तक आने का कहा. थोड़ी देर बाद उनका फ़ोन आया, 'मैं इंतज़ार करूंगा.'

मैं तैयार होकर अन्नपूर्णा मंदिर के पास की धर्मशाला में पहुंचा गया. वहां से परिचित व्यक्ति को लेकर सुदामा नगर का ७६६ मकान नंबर ढूंढने में हमें काफ़ी समय लग गया. इसी बीच चार बार डॉ. सतीश दुबे जी का फ़ोन आ गया. कहां तक आये हो! मैंने अपने साथ वाले को फ़ोन देकर कहा बताओ उन्हें, कहां तक आये हैं. क्योंकि मैं सुदामा नगर में प्रथम बार आया था. उनका मकान ढूंढने में आधा घंटा लग गया. यक़ीन मानिए वे जिस बेसब्री से मेरा इंतज़ार कर रहे थे, मैं बयान नहीं कर सकता. जब मैं उनके मकान पर पहुंचा, उन्होंने आत्मीय भाव से स्वागत किया,

कुछ समय मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे उनकी बहुत दिनों से तलाश थी. वही व्हील चेयर पर बैठे हुए मगर चेहरे पर सौम्यता के साथ चमक थी. मुझसे मिलकर इतने ख़ुश हो गये, जैसे मैं बहुत दिनों से कहीं खो गया था, जो अब जाकर मिला हूं. हां उनकी निग़ाह में मैं खो गया था. १९७७ से २६ जनवरी २०१६ के अंतराल में मुलाकात हुई, क्षणभर में ही मैंने सब भांप लिया उनमें कितनी जीवटता भरी हुई थी. मैं दरवाज़े के पास कुर्सी पर बैठ गया, वो बोले — मेरे सामने आकर बैठो ताकि रूबरू बात हो सके. मैं उनके सामने सोफ़ा सेट पर बैठ गया था. आगे बोले — आप आये, मुझे बहुत अच्छा लगा, पहले भी आये थे. मुझे ससुराल शादी में जाना था. अत: मैंने आपको मना कर दिया. योग ऐसा बैठा आज भी मुझे ससुराल शादी में जाना था. आप आ रहे हैं. इसलिए मैं नहीं गया. मिसेस को भेज दिया.

मैं भीतर ही भीतर उनकी बात सुनकर शर्मिंदा हुआ बोला आप चले क्यों नहीं गये. मैं तो आपसे और कभी भी मिल लेता. वे बोले — नहीं मुझे आपसे मिलना ज़रूरी था. फिर साहित्य की लंबी चर्चा में खो गये. चर्चा के दौरान उन्होंने बताया — अब भी दो घंटे मैं नियमित लिखता हूं जब आपका फ़ोन आया था, तब मैं लिख रहा था. उनकी लेखन की सक्रियता देखकर मैं अविभूत हो गया. सोचा इनके मुक़ाबले मैं कुछ नहीं लिखता, यही उनकी जीवटता थी. कर्मठता और लेखन के प्रति लगन अपने भीतर कमी का एहसास नहीं होने देती है. कब बातचीत करते दो घंटे निकल गये, पता भी नहीं चला. इसी बीच मैं उनसे बहुत कुछ सीख चुका था. व्हील चेयर पर रहने के बाद भी उनके चेहरे पर शिकन तक न थी. उंगलियां धंसी हुई ज़रूर थी मगर अब भी वे लेखन में बाधक नहीं बनी हुई थीं. मेरे सामने 'कथाबिंब' का वह इंटरव्यू घूम रहा था. जिसमें उन्होंने अपनी अपंगता का उल्लेख किया था. जैसे मैंने इंटरव्यू में पढ़ा उससे कहीं अधिक ज़्यादा पाया. वे भले ही मेरी खातिर शादी में नहीं गये, मगर मैं उनका सानिध्य पाकर धन्य हो गया. बातचीत करते जब काफ़ी देर हो गयी, तब मैंने कहा अब आप इज़ाजत दें, जिस कार्यक्रम के लिए आया हूं वह शुरू हो गया होगा या होने वाला होगा — 'आपको बधाई और आप फिर आवे. यदि आयें तो दो-तीन दिन पहले फ़ोन कर देवें, आपके आने के सम्मान में गोष्ठी करके अपने को धन्य समझूंगा', जब आत्मीयता से उन्होंने यह बात कही, मैं धन्य हो उठा. उनके आग्रह को ज़रूर स्वीकार कर लिया और उन्हें आश्वस्त भी किया. उठते-उठते फिर भी १५-२० मिनिट बातें होती रहीं. मगर जाते-जाते उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात कही. उनकी पत्नी का कितना प्रेम था, उनसे साफ़ झलकता था. उन्होंने कहा था मनोहरा जी, श्रीमती जी शादी में गयी हैं. वरना आपको बिना भोजन कराये जाने नहीं देती. कितना प्रेम था, यह जाना. अंतिम नमस्ते करके बाहर निकल गया. मगर वे व्हील चेयर से ही मुझे देखते रहे.

मैं सड़क पर आने के बाद सोच रहा था. मेरी ख़ातिर शादी जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम में, वह भी ससुराल पक्ष में हो गये नहीं. उनकी कितनी महानता थी. तब मैं स्वयं अपनी निग़ाह में अपराधी हो गया. मगर मैं जब तक अपने गंतव्य की ओर न पहुंचूं तब तक उनकी महानता के कई विचार आते रहे. मेरी हार्दिक इच्छा उनसे मिलने की थी, वह तो पूरी हो गयी. उनसे मिलकर ऐसा लगा जैसे तीर्थ करके आया हूं.

समय बीतता गया. इंदौर वैसे भी मेरा आना होता है. मगर २५ दिसंबर २०१६ को जबलपुर से भाई कुंवर प्रेमिल ने फ़ोन से दु:खद समाचार की सूचना दी कि डॉ. सतीश दुबेजी नहीं रहे. सुनकर मैं दंग रह गया. मगर जब इसकी पुष्टि करने के लिए इंदौर के श्री वेद हिमांशु को फ़ोन लगाकर की. मगर उन्होंने फ़ोन नहीं उठाया तब मैंने सदाशिव कौतुक जी को फ़ोन लगाया तो उन्होंने बताया डॉ. सतीश दुबे नहीं रहे. अभी शमशान से लौटकर आया हूं. डॉ. सतीश दुबे नहीं रहे उन्होंने एक महत्वपूर्ण बात वह भी बतायी कि १५ वर्षों से वे व्हीलचेयर पर रहे. फिर भी सक्रिय लेखन के साथ जीवटता उनमें कूट-कूट कर भरी थी. मेरा उनसे पुन: मिलने का सपना, सपना रह गया. आज वे हमारे बीच नहीं हैं. साहित्य का सूर्य ज़रूर अस्त हो गया. मगर युगों-युगों तक वे अपना प्रकाश प्रकाशित करता रहेंगे.

डॉ. सतीश दुबे जी के असामयिक निधन पर श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करते हुए उन्हें अपने चरणों में स्थान प्रदान करें.

शीतला माता गली,
जावरा, जिला रतलाम -४५७२२६ (म. प्र.)
मो. : ९४७९६६२२१५

मेरे शोध निर्देशक : प्रो. बैजनाथ त्रिपाठी

✍ डॉ. रूपसिंह चंदेल

मैं या मेरे बड़े भाई जिस दरवाज़े गये एक ही उत्तर मिलता रहा कि मैंने एक निजी छात्र के रूप में एम. ए. किया था. जब प्रोफ़ेसरों को बताया जाता कि फिर भी मैंने प्रथम श्रेणी पायी तब उनका उत्तर होता, लेकिन हम निजी छात्रों को अपने अधीन शोध नहीं करवाते. एक-दो ने इस बात का बहाना लिया कि मैं कानपुर से बाहर नौकरी करता था. दो ऐसे भी थे जो रज़िस्ट्रेशन के लिए तैयार थे, लेकिन उसके लिए अग्रिम तीन हज़ार रुपयों की मांग कर रहे थे और प्रतिवर्ष एक हज़ार रुपये अलग. यह बात १९७६-७७ की है और उन दिनों के हिसाब से इस रक़म का क्या अर्थ रहा होगा, सोचा जा सकता है. इनमें एक प्रोफ़ेसर कानपुर के क्राइस्ट चर्च कॉलेज़ के थे और दूसरे थे मोदी कॉलेज़ मोदीनगर के. जबकि मुझे मालूम था कि शोध के लिए निर्देशक को एक धेला भी नहीं देना होता. उन लोगों द्वारा अपनी योग्यता का यह बेशर्म दुरुपयोग था. और यह दुरुपयोग आज भी ज़ारी है. अब क़ीमतें बढ़ गयी हैं. बात मूल्य की ही नहीं है. शोध के लिए छात्रों को कैसे-कैसे पापड़ बेलने होते हैं यह वही जानता है जिसने शोध किया है (ख़ासकर हिंदी और संस्कृत में). बहुत कम भाग्यशाली होते हैं जिन्हें उन स्थितियों से न गुज़रना पड़ता हो और बहुत ही कम शोध निर्देशक ऐसे हैं जो सीधे-सरल हों और छात्र के हित के लिए सोचते हों. अंततः बहुत दौड़-धूप के बाद अपने मित्र श्री दुर्गाप्रसाद शुक्ल के माध्यम से मुझे कानपुर गोविंदगर के डी बी एस कॉलेज़ के हिंदी विभाग के रीडर डॉ. बैजनाथ त्रिपाठी मिले. शुक्ल जी भास्करानंद इंटर कॉलेज़, नरवल में मेरे सीनियर थे और उन दिनों कानपुर विश्वविद्यालय में डिग्री विभाग में सेवारत थे.

मेरे लिए शोध निर्देशक के लिए कभी मेरे बड़े भाई ने शुक्ल जी से चर्चा की थी और उन्होंने डॉ. त्रिपाठी जी से. संयोग की बात कि उन्हीं दिनों डॉ. त्रिपाठी के अधीन एक छात्र ने अपना शोध प्रबंध संपन्न कर विश्वविद्यालय में डिग्री के लिए प्रस्तुत किया था. डॉक्टर साहब तैयार हो गये. मैं शुक्ल जी के साथ उनसे मिला और तय हुआ कि मैं किसी रचनाकार के कथा साहित्य पर शोध करूंगा. जब शंभूरत्न त्रिपाठी जी ने कुछ शास्त्रीय विषय सुझाये तब त्रिपाठी जी ने कहा था कि मेरे लिए वे उपयुक्त न रहेंगे. वे बहुत ही दुरूह विषय थे. अंततः दो वर्ष बाद मुझे बाबू प्रतापनारायण श्रीवास्तव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध की अनुमति विश्वविद्यालय से मिल गयी थी.

डॉ. त्रिपाठी एक बेहद सरल और सौम्य व्यक्ति थे. इतने सरल व्यक्ति विरले ही मिलते हैं और वह भी शोध निर्देशक के रूप में. उन्होंने पहले ही दिन एक बात कही थी कि तुम्हें ही सामग्री जुटानी होगी, क्योंकि उनके महाविद्यालय के पुस्तकालय से कुछ भी संभावना नहीं और चूंकि मैं कानपुर से दूर मुरादनगर में रहता हूं इसलिए वह संभव भी नहीं. उन्होंने यह भी कहा था कि हर तीन माह में मुझे लिखे काम को चेक करवाने आना होगा. विश्वविद्यालय के नियमानुसार यह आवश्यक था. मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा था, 'डॉक्टर साहब, आप निश्चिंत रहें. मुझे केवल आप अपने अधीन रज़िस्ट्रेशन करवा दें शेष कार्य मैं स्वयं करूंगा.' और मैंने किया. मैं जो भी लिखता, डॉक्टर साहब को दिखाने के लिए हर तीन माह में मुरादनगर से भाग लेता रहा था.

जब भी उनसे मिलने गया, उन्हें एक छोटे कमरे में दीवान पर बैठे पाया. यद्यपि वह जिस मकान में रहते थे उसे एक बड़ी कोठी कहना उचित होगा, जिसमें वह, उनके बड़े भाई, जिनके बेटे मनोज त्रिपाठी बाद में मेरे मित्र बने, और उनके छोटे भाई डॉ. एम. एल. त्रिपाठी, जो कानपुर के प्रसिद्ध चाइल्ड स्पेशलिस्ट हैं, रहते थे. यह उनका निजी मकान है. डॉ. बैजनाथ त्रिपाठी जी का जीवन बेहद सादगीपूर्ण था. वे लंबे, गोरे (कुछ गेहुंआपन लिये) और सामान्य देहष्टि के व्यक्ति थे. धीमे बोलते लेकिन इतना धीमे भी नहीं कि आप सुन ही न पायें.

जब मैं पहली बार उनसे मिला तब देखकर उन्हें पहचाने बिना नहीं रह सका था. हुआ यह था कि १९७३ में नौकरी में आने के बाद मेरी पढ़ने की ललक पुनः जाग्रत हो उठी थी. उससे पहले ग्यारहवीं तक की शिक्षा ही नियमित छात्र के रूप में मैं ले पाया था और बारहवीं मैंने एक निजी छात्र के रूप में उत्तीर्ण किया था. जब नौकरी मैं आया मैं केवल बारहवीं पास था और आई. टी. आई. से एक वर्ष का टाइपिंग का कोर्स किये हुए था.

१७ अप्रैल, १९७३ को मैंने कानपुर की आर्डनैंस फ़ैक्ट्री के लेखा विभाग में नौकरी ज़्वाइन की. बड़े भाई चाहते थे कि मैं अपने, मां और छोटे भाई के साथ अलग रहने की व्यवस्था करूं. यह उचित भी था. उससे पहले हम सभी उन पर निर्भर थे. अब वे अपने परिवार पर ध्यान केंद्रित करना चाहते थे. उन्होंने मेरे लिए मई या जून '७३ में बाबू पुरवा लेबर कॉलोनी में पुलिस चौकी के सामने ऊपर की मंजिल का एक कमरे का फ़्लैट ख़रीद दिया, जिसमें कमरे के साथ बड़ा-सा बरामदा था. हम तीनों के लिए पर्याप्त स्थान था वह. मेरे ब्लॉक के सामने उनके साथ काम करने वाले परमार साहब का फ़्लैट था और नीचे बड़े भाई के ख़ास मित्र वाई. एन. एस. चौहान का फ़्लैट. परमार के फ़्लैट में रात-दिन गहमा-गहमी रहती थी, जबकि चौहान अपने काम से काम रखने वाले व्यक्ति थे. हालांकि वह परमार के ख़ास मित्र थे और प्रायः वहां बैठते, लेकिन रहते वह अपने में लीन. पूरे समय अपने बच्चों को लेकर गंभीर और इसका उन्हें लाभ भी मिला था. परमार एच. ए. एल. में नेतागिरी करते थे इसलिए उनके यहां आने-जाने वाले उसी प्रकार के लोग थे. मैं चौहान साहब के यहां यदा-कदा चला जाता, लेकिन शेष अपने में ही सीमित रहता था.

जब कॉलेज़ खुले और उनमें प्रवेश प्रारंभ हुआ, रेगुलर पढ़ने की मेरी लालसा तीव्रतर हो उठी. मैंने इस बारे में अपने कार्यालय में पूछा. कहा गया कि दफ़्तर को कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन शर्त यह है कि समय से दफ़्तर पहुंचना होगा और विभाग से लिखित अनुमति लेनी होगी. मुझे एक दो कर्मचारियों ने यह भी बताया कि विभाग अनुमति तो दे देता है लेकिन अधिकारी कभी नहीं चाहते कि उनके अधीन काम करने वाला व्यक्ति पढ़-लिखकर आगे बढ़े. इसलिए वे किसी न किसी रूप में बाधाएं उत्पन्न करते रहते हैं. मैंने अगले ही दिन अपने विभाग में बी. ए. में प्रवेश के लिए लिखकर दे दिया और सुबह की शिफ़्ट में कहां प्रवेश ले सकता था इस बारे में जानकारी जुटाने लगा. मेरे लिए गोविंदनगर का डी बी एस. कॉलेज़ ही सुविधाजनक होने वाला था और यह अच्छी बात थी कि वहां सुबह की शिफ़्ट थी. यह कॉलेज़ आर्डनैंस फ़ैक्ट्री जाते हुए मेरे रास्ते में पड़ता था. बस साइकिल को थोड़ा उस ओर से मोड़ देना था... केवल आध किलोमीटर का अंतर. मैंने वहां सुबह की शिफ़्ट में प्रवेश ले लिया. चार दिन कॉलेज़ गया और उन चार दिनों में पहला पीरियड ही लगा. मेरे पास हिंदी साहित्य था. उन चारों दिन जो प्राध्यापक मुझे हिंदी पढ़ाने आये वह डॉ. बैजनाथ त्रिपाठी जी थे. मेरे भाग्य में चार दिन ही डिग्री कॉलेज़ जाना लिखा था. चार दिन बाद मेरा स्थानांतरण मेरे हेड ऑफ़िस, कोलकता से मुरादनगर के लिए आ गया. मुझे नोट करवाया गया तब मुझे जिस चिंता ने सबसे अधिक परेशान किया था वह थी वर्षों से संजोयी उस आकांक्षा पर वज्रपात होना जिसके अनुसार मैं उच्च शिक्षा पाने के सपने देखने लगा था.

मुझे विवश होकर कॉलेज़ जाना बंद करना पड़ा था. यह संयोग ही था कि कानपुर विश्वविद्यालय का सेशन आगे बढ़ता गया था और निजी छात्रों के फॉर्म भरने की तारीख़ बढ़कर शायद मार्च तक जा पहुंची थी. बड़े भाई ने लिखा कि अवसर है, मैं अपनी अभिलाषा पूरी कर सकता हूं. और मैं एक निजी छात्र के रूप में डी. ए. वी. कॉलेज़ से बी. ए. प्रथम वर्ष का फॉर्म भर आया था. इस प्रकार निजी छात्र के रूप से मैंने एम. एम. हिंदी किया और शोध के लिए उन्हीं डॉ. बैजनाथ त्रिपाठी जी के सामने था, जिन्होंने मुझे चार दिन पढ़ाया था.

□

एक सुहृदय व्यक्ति थे डॉ. त्रिपाठी, निरहंकारी. जितने सरल उतने ही विनम्र. किसी भी बात का मुस्कराकर उत्तर देते. वे उन शोध निर्देशकों से हज़ारों मील दूर थे जो शोधार्थियों का विभिन्न तरह से इस्तेमाल करते हैं और फिर भी अकड़ में रहते हैं. दो घटनाओं का उल्लेख करना चाहता हूं. इन दिनों मेरा विवाह लखनऊ आकाशवाणी में कार्यरत पुस्तकालयाध्यक्ष सुश्री मंजुलता सिंह के साथ तय हुआ. आश्चर्यजनक बात यह थी उसमें कि यह संबंध मुझसे बिना पूछे और मिले ही तय हो चुका था, लेकिन मिलना तो था ही. बड़े भाई ने फ़ोन करके कहा कि मैं तुरंत कानपुर पहुंचूं

और उस लड़की से लखनऊ जाकर मिलूं. वह मेरी बढ़ती उम्र से परेशान थे. शायद सत्ताइस का हो चुका था. मैं लखनऊ पहुंचा. लेकिन मैं अकेले नहीं गया. मेरे साथ वह सज्जन भी थे जो लड़की के पिता के साथ कानपुर में नौकरी कर चुके थे और उस शादी के मध्यस्थ थे. मुझे उनके साथ जाना था. हम दोनों सीतापुर एक्सप्रेस से लखनऊ पहुंचे और सीधे आकाशवाणी. जब हम सुश्री मंजुलता सिंह के दफ़्तर पहुंचे तब वह चाय का अपना जूठा कप बाहर नल में धो रही थीं. मध्यस्थ सीधे सरल व्यक्ति थे और बहुत ही संकोची. लेकिन उन्हें ही आगे होकर लड़की से सुश्री सिंह के विषय में पूछना था. बहुत ही संकोच के साथ उन्होंने पूछा तो ज्ञात हुआ कि वही सुश्री सिंह थीं. सुश्री सिंह ने लाइब्रेरी किसी को संभलवायी और हमें लेकर कैंटीन पहुंचीं. लगभग आध घंटा हम उनके साथ रहे, फिर वापस कानपुर लौट आये. लड़की ने लड़का देख लिया था और लड़के ने लड़की... लड़की के पिता श्री लाल सिंह (शायद लालचंद सिंह) मुझे देखे बिना ही मुझे अपना दामाद बनाने पर तुले हुए थे. तिलक की तिथि तय हो गयी. बड़े भाई ने शामियाना तय कर लिया. हलवाई तय हो गया और निमंत्रण कार्ड बंट गये. मुझे तिलक वाले दिन सुबह पहुंचना था. लेकिन दो दिन पहले फ़ोन पर सूचना मिली कि लड़की के बाबा की मृत्यु हो गयी है और तिलक की तिथि अनिश्चित समय के लिए टल गयी थी. बाद में जो पता चला वह यह कि लड़की के बाबा की मृत्य बहुत पहले ही हो चुकी थी. सुश्री सिंह शायद किसी अन्य से शादी करना चाहती थीं और शायद उनके परिवार को वह लड़का पसंद नहीं था.

बड़े भाई ने अपने निकट के लोगों और रिश्तेदारों को सूचित कर दिया और मुझे भी लेकिन डॉ. त्रिपाठी को सूचित करना भूल गये थे. मैं जब अपनी आगामी कानपुर यात्रा में डॉक्टर साहब से मिला तो उन्होंने हंसते हुए बताया कि वह तिलक वाले दिन निर्धारित समय पर निमंत्रण पत्र में सूचित स्थान पर गये थे, लेकिन वहां कोई व्यवस्था न देख चुपचाप बिना किसी से दरियाफ़्त किये लौट गये थे. दरअसल व्यवस्था वहीं सड़क घेरकर होनी थी जहां बड़े भाई साहब रहते थे. डॉ. त्रिपाठी जब वहां पहुंचे व्यवस्था की जगह पर कुत्तों को घूमते देखा होगा और उलटे पांव लौट गये होंगे. मैं बहुत शर्मिंदा था और इसके लिए मैंने उनसे क्षमा मांगी तो वह मुस्कराकर बोले थे, 'अरे, यह सब तो होता ही रहता है. मैं समझ गया था कि कोई व्यवधान आ गया है इसलिए तिलक टल गया है.'

दूसरी घटना है गर्मी के दिनों की. शायद अप्रैल १९७९ की. मैं बिहरना रोड से पैदल नयागंज होते हुए घंटाघर की ओर जा रहा था. वहां से रेलवे पुल पारकर रेल बाज़ार की ओर से काठ के पुल के लिए रिक्शा लेना था बेगमपुरवा कॉलोनी जाने के लिए. काठ का पुल पुराने कानपुर रेलवे स्टेशन के पास है, जहां उन दिनों मालगाड़ियां खड़ी रहती थीं और शायद लोको वर्कशॉप भी है. रेलवे लाइन के दोनों ओर रेलवे कर्मचारियों के मकान हैं.

मैं नया गंज चौराहे के पास पहुंचा, जहां से बिरहना रोड प्रारंभ होती है, कि मुझे डॉ. त्रिपाठी सामने से आते दिखाई दिये. मैंने चरण स्पर्श किये तो पूछा, 'कहां से आ रहे हो?' आज याद नहीं कहां से आ रहा था. नयागंज की रोड बहुत व्यस्त रहती है. दोनों ओर किराना और मसालों

ग़ज़ल

✍ शरीफ़ कुरेशी

दौर चल रहा है,
ग़म बदल रहा है.
लोग सो रहे हैं,
शहर जल रहा है.
आज दरिया दरिया,
आग उगल रहा है.
आज हर लुटेरा,
फूल फल रहा है.
जंग के हैं आसार,
वक़्त टल रहा है.
अम्न का फ़रिश्ता,
हाथ मल रहा है.
कल की ज़िंदगी में,
ख़ौफ़ पल रहा है.
कल शरीफ़ मिलना,
कौन कल रहा है !

१/९१, भूसामंडी,
फ़तेहगढ़- २०९६०१ (उ. प्र.)
मो. : ९०४४६७४७०१

का थोक बाज़ार है. और भी बहुत-सी दुकानें हैं. हम एक ओर एक दूकान के पास रुककर बातें करने लगे. लेकिन तभी मुझे अपनी मूर्खता समझ आयी. मेरे शोध निर्देशक एक व्यस्त मार्केट में मेरे साथ थे और मैं केवल उनसे बातें किये जा रहा था. सामने हलवाई की दुकान थी, जिसमें बड़े कड़ाहों में दूध गर्म हो रहा था और लस्सी बनायी जा रही थी. नयागंज के ओर-छोर में इस प्रकार की कई दुकानें हैं. वह दुकान ठीक चौराहे पर थी, जबकि सिरकी मोहाल की ओर जाने वाली पंद्रह फ़ीट सड़क पर और भी दुकानें थीं. मैंने डॉ. त्रिपाठी से लस्सी पीने का आग्रह किया. कई बार ना–नुकर के बाद उन्होंने अपने इस शिष्य का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया. वहां बैठने की व्यवस्था न थी. दोनों ओर से दो पहिया वाहनों और रिक्शों की रेलमपेल थी. हम खड़े होकर लस्सी का आनंद लेते रहे थे.

वह पहला और अंतिम अवसर था जब मुझे डॉ. त्रिपाठी के लिए कुछ सेवा का अवसर मिला था और सेवा भी क्या... एक गिलास लस्सी पिलाने का. जब शोध की उपाधि मिली तब अवश्य एक किलो मिठाई का डिब्बा लेकर गया था उनके निवास पर. उससे पहले कभी आधा दर्ज़न केले तक नहीं ले गया था. जबकि हमारे क्षेत्र की परंपरा है कि कभी किसी से मिलने जाते समय खाली हाथ नहीं जाना चाहिए. लेकिन पहली मुलाकात में ही डॉक्टर त्रिपाठी ने कुछ बातें स्पष्ट की थीं, जिनमें यह संकेत भी था कि वह अन्य शोध निर्देशकों जैसे नहीं जो अपने शोध छात्रों से उपहारों या अन्य चीज़ों की अपेक्षा करते हैं और न मिलने पर अड़ंगे लगाते रहते हैं.

□

शादी के बाद कुछ पारिवारिक स्थितियां ऐसी बनीं कि मेरा कानपुर जाना कम हो गया था और एक समय ऐसा भी आया कि मैंने पीएच. डी. करने का इरादा ही छोड़ दिया था. स्पष्ट है कि उस दौरान मैं डॉ. त्रिपाठी से मिल भी नहीं पाया. यदि मेरे मित्र स्व. डॉ. सुधांशु मिश्र ने मुझे प्रेरित न किया होता और मुझे एक वर्ष का अतिरिक्त समय लेने की सलाह न दी होती तो शायद ही मैं काम पूरा कर पाता, जबकि तब तक मैं पांच अध्याय लिख चुका था और डॉ. त्रिपाठी को दिखा भी चुका था. डॉ. मिश्र ने तो उत्साहित किया ही डॉ. त्रिपाठी ने भी हिम्मत बंधायी और हर तरह से सहयोग का आश्वासन दिया और मैंने उस अंतिम एक वर्ष में कार्य पूरा करके प्रबंध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया था.

डिग्री मिलने के बाद मैं एक बार ही डॉ. त्रिपाठी से मिला. कानपुर जाना इतना कम हुआ और यदि गया भी तो इतने कम समय के लिए कि उन तक नहीं पहुंच पाया. आज उन्हें याद करते हुए मैं अनुभव कर रहा हूं कि उन जैसे शोध निर्देशक आज दुर्लभ ही हैं.

✍ **फ़्लैट-७०५, टॉवर-८,**
विपुल गार्डेन्स, धारूहेड़ा,
हरियाणा-१२३१०६
मो. : ८०५९९४८२३३

''काव्य-वीणा सम्मान'' पंचम हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

कोलकाता की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं साहित्यिक चेतना जागरण केंद्र **''परिवार मिलन''** विगत सन २०१३ से प्रति वर्ष हिंदी काव्य कृति के लिए ''काव्य-वीणा सम्मान'' दे रही है. इस वर्ष पंचम सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से वर्ष २००५ के बाद प्रकाशित अपनी कृति की चार-चार प्रतियां एवं पासपोर्ट आकार के दो चित्र अपने संक्षिप्त परिचय के साथ परिवार मिलन कार्यालय **(४, एस. एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-७०००३८)** में भेजने का आग्रह किया जाता है.

कृति के 'भाव पक्ष' एवं 'कला पक्ष' अर्थात हृदयस्पर्शी विषय वस्तु, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, लयात्मकता, सुललित छंद योजना तथा भाषा सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जायेगा. सम्मान राशि ५१०००/- रु. होगी तथा चयन समिति का निर्णय अंतिम एवं मान्य होगा. कृति भेजने की अंतिम तिथि दिनांक ३० अप्रैल २०१७ है.

बदलते परिवेश की संवेदनापूरित सशक्त लघुकथाएं

✍ डॉ. शील कौशिक

आंगन-आंगन हरसिंगार (ल. संग्रह) – **कमल कपूर**
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, १/२० महरौली,
नयी दिल्ली-११००३०. **मूल्य-** ३००/- रु.

राष्ट्रीय स्तर पर कथा–साहित्य में अपनी पुख़्ता पहचान बनाने वाली प्रतिष्ठित साहित्यकार कमल कपूर अपनी सद्य प्रकाशित बींसवी कृति तथा लघुकथा की तीसरी कृति 'आंगन–आंगन हरसिंगार' लेकर साहित्यांगन में आयी हैं. १५० पृष्ठों में समाहित ८८ लघुकथाओं का समग्र पाठ अपनी विशिष्टताओं के कारण इन्हें अलग पंक्ति में खड़ा करता है. इनकी अधिकतर लघुकथाएं संवेदना से भरपूर हैं, इनमें भावों की इतनी प्रबलता है कि ये रह–रह कर पाठकों का मन भिगो जाती हैं, यथा 'चलो अपने घर' लघुकथा में. कमल कपूर क्योंकि एक समृद्ध कथाकार हैं, इनकी प्रत्येक लघुकथा का कथानक सुगठित व कथा रस से भरपूर है. लेखिका प्रस्तुत लघुकथाओं में कहानी की तरह ही वातावरण निर्मित करती हैं और यथासंभव प्रकृति को अंग–संग लेकर चलती हैं, जिससे लघुकथा की पठनीयता, रोचकता व संप्रेषणीयता बढ़ी है. यथा 'हरे–पीले पत्ते' लघुकथा में जेनीफर और विलियम की १६ वर्ष की बेटी उन्हें यह कह कर मिला देती है – 'हर पतझर के बाद बसंत ऋतु आती है मम्मी–पापा! आप दोनों टूटे पीले पत्ते अब बुहार कर फेंक दीजिए और नये हरे पत्ते चुनिए.'

स्वभावत: कमल कपूर साहित्य के माध्यम से एक प्यार भरा, सुखी और आदर्श परिवार व समाज अपने आस–पास देखना चाहती हैं इसलिए इनकी अधिकांश लघुकथाएं उदात्त भावनाओं और आदर्श की भित्ति पर टिकी हैं. जहां एक ओर वे बेमानी रूढ़िगत मान्यताओं का खंडन कर नये प्रतिमान घड़ती व नये पथ का निर्माण करती नज़र आती हैं, वहीं हमारी सांस्कृतिक धरोहर को बचाये रखने के लिए भी कृतसंकल्प हैं. इस प्रकार का लेखन कर कमल ने अपने लेखकीय धर्म का पूरी तरह से निर्वाह किया है. उदाहरण स्वरूप लघुकथा 'भागभरी' में भागभरी के विधवा होने पर कोई उससे करवे के व्रत के लिए सुहागन का सामान (चूड़ियां, करवे, बिंदी, काजल, मेहंदी आदि) नहीं खरीदता परंतु लेखिका इसे नकारते हुए स्वयं विधवा भागभरी से करवाचौथ के लिए सुहागन का सामान ख़रीद कर उदात्त संदेश देती है.

जहां तक लघुकथाओं की विषय वस्तु का संबंध है तो कमल ने अपने घर–परिवार व समाज में रहते हुए अपने आस–पास गुज़रते पलों को महसूस कर अनुभव की आंच पर पका कर कथ्य में पिरोया है. ऐसे पल हम सबने भी अलग–अलग समय पर अपनी दिनचर्या में महसूस किये होंगे पर कमल को मानव मनोविज्ञान व पारिवारिक विसंगतियों की गहरी समझ है. वे एक नये कथानक के साथ–साथ लघुकथाओं में उचित समाधान भी प्रस्तुत करती हैं. संग्रह की लघुकथाओं का अंत सहज और स्वाभाविक है जो पाठकों की चेतना को झकझोर कर चिंतन बीज तो थमाती ही हैं साथ ही आंखें नम होने पर विवश भी करती हैं.

समग्रत: विविध विषयक इन लघुकथाओं की भाषा सरल, अलंकृत व सुग्राहय है. एक मीठा–सा अहसास व झरने सी रवानगी इन लघुकथाओं से गुज़रने पर बनी रहती है. संवादात्मक, संस्मरणात्मक, विवरणात्मक शैली व सुदृढ़ शिल्प में सधी ये लघुकथाएं अपना समुचित प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं. संग्रह की बहुत अच्छी लघुकथाएं हैं — भागभरी, काश, खाली पैमाना, सहधर्मिणी, इतनी सी बात, परदेसी परिंदा,अंतराल, हरे–पीले पत्ते, देना–पावना, पर्दा गिरा दो, मैं क्यों नहीं, चलो अपने घर, मां मरी नहीं, छूटा हुआ सामान, सांझा दर्द आदि. प्रस्तुत सभी लघुकथायें लघुकथा के मानदंडों पर खरी उतरती हैं. मेरा ध्रुव विश्वास है की इस लघुकथा-संग्रह का साहित्य जगत में सर्वत्र स्वागत होगा. नारीपूरित सशक्त अभिव्यक्ति भरे इस संग्रह के लिए कमल कपूर जी को साधुवाद.

१७ / २०,सिरसा (हरियाणा)
मो.:९४१६८४७१०७
ईमेल –sheelshakti80@gmail.com

लघुकथा

परंपरा

✍ आनंद बिल्थरे

सर, मेरी नियुक्ति, आपके स्कूल में बतौर शिक्षक हुई है, मैं शिक्षा के साथ, स्वेच्छा से अपने स्व. पिता श्री कृपाशंकर शर्मा की तरह, तन मन से, अपनी सेवाएं, अर्पित करना चाहता हूं.

आपको तो ज्ञात ही होगा कि कृपाशंकरजी बच्चों से कितना स्नेह करते थे. अपने खाली वक़्त में वे, बच्चों की कटी-फटी कॉपी क़िताबों पर स्वयं के व्यय से सुंदर कवर चढ़ा दिया करते थे. उन्हें साफ़-सुथरा रहने की, सीख दिया करते थे. उन्हें स्वच्छता, काफ़ी पसंद थी. सेवानिवृत्ति के बाद भी वे आजीवन स्वेच्छा से यही करते रहे.

वे, इस स्कूल के आदर्श थे. बच्चे आज भी उनकी तस्वीर के आगे, सिर झुकाकर प्रेरणा प्राप्त करते हैं. एक दूसरे को, स्वच्छ रहने की सीख देते हैं.

मैंने, अपने पिता के कार्य की उनके जीवित रहते कभी सराहना नहीं की. मुझे लगता था कि वे परिवार की उपेक्षा कर व्यर्थ अपना समय और पैसा बर्बाद कर रहे हैं. किंतु उनके जाने के बाद बच्चे, बड़ों का, उनके प्रति सम्मान देखकर मुझे लगा कि यह परंपरा ज़ारी रहनी चाहिए. एक-एक तिनके से ही, सुरक्षित घोंसला बनता है सर.

अगर मैं, पिता के पदचिन्हों पर कुछ क़दम ही चल सका, तो उनके प्रति, मेरी यह विनम्र श्रद्धांजलि होगी.

✍ *प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१ (म. प्र.)*
मो.: ८३५८९२१००५

निवेदन

रचनाकारों से

''**कथाबिंब**'' एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी कहानियां भेज सकते हैं. कृपया लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि ई-मेल से न भेजें. ई-मेल का पता है : kathabimb@gmail.com रचना की ''डॉक'' फ़ाइल के साथ ''पीडीएफ'' फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

प्राप्ति-स्वीकार

नौ मुलाकातें (उपन्यास) : **बृज मोहन,** एपीएन प्रकाशन, हस्तसाल रोड, उत्तम नगर, नयी दिल्ली-११००५९. मू. १८० रु.
संजीवनी (उपन्यास) : **ऊषा वर्मा,** मकरंद प्रकाशन, बी-१४, सेक्टर-१५, नोएडा-२०१३०१. मू. १२५ रु.

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (भाग-२) : **सुधा ओम ढींगरा,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. ४०० रु.

गुलामों का गणतंत्र (कहानी सं.) : **राजेंद्र चंद्रकांत राय,** अंतिका प्रकाशन, सी-५६/यूजीएफ-४, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन, गाजियाबाद-२०१००५. मू. २३५ रु.
अमृत दा ढाबा (क. सं.) : **नीता श्रीवास्तव,** समय प्रकाशन, ११-दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ३५०रु.
खिड़की (क. सं.) : **बृजमोहन,** अनन्य प्रकाशन, ई-१७, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. २५०रु.
मंडी (क. सं.) : **जयराम सिंह गौर,** अनुभव प्रकाशन, ई-२८, लाजपत नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद-२०१००५. मू. १५० रु.
भटके हुए राही (क. सं.) : **देवेंद्र कुमार मिश्रा,** उद्योग नगर प्रकाशन, ६९५, न्यू कोट गांव, गाजियाबाद (उ. प्र.) मू. ३०० रु.
चट्टानें (क. सं.) : **डॉ. किशोरीलाल व्यास,** फ्लैट नं. ६, ब्लॉक-३, केंद्रीय विहार, मियांपुर, हैदराबाद-५०००४९. मू. २०० रु.

देश-विदेश से कथाएं (ल. सं.) : **डॉ. अशोक भाटिया,** साहित्य उपक्रम, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२. मू. ८० रु.
अंदर एक समंदर (ल. सं.) : **डॉ. सुरेश तन्मय,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २२० रु.
यादों का दस्तावेज (ल. सं.) : **कोमल वाधवानी प्रेरणा,** शब्द प्रवाह, ए/९९, व्ही. डी. मार्केट, उज्जैन-४५६००६. मू. २५० रु.

कितने हिटलर (गद्य) : **एच. एन. राम,** शुभदा प्रकाशन, १/११०५२-ए, सुभाष पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. ३५० रु.
भीष्म पितामह हाजिर हों (गद्य) : **एच. एन. राम,** प्रकाशन संस्थान, ४२६८-बी/३, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ४५० रु.
राम-राम कंछी लाल (व्यं.सं.) : **योगेंद्र शर्मा,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २०० रु.

कामायनी और आंसू (काव्य) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** कामायनी, १४३/२, बलिहार रोड, मोराबादी, रांची-८३४००८. मू. २५० रु.
अपने-अपने आकाश (क. सं.) : **अनुपम सक्सेना,** अंजुमन प्रकाशन, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद-२११००३. मू. २०० रु.
ओझल होता हुआ सच (क. सं.) : **सदाशिव कौतुक,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.
बचा है सिर्फ अकेलापन (क. सं.) : **निरुपम,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २४० रु.
कितनी दूर और चलने पर (गीत) : **सत्येंद्र कुमार रघुवंशी,** अनामिका प्रकाशन, ५२ तुलारामबाग, इलाहाबाद-२११००६.मू. १९५ रु.

सहरा के फूल (ग. सं.) : **ए. एफ. नज़र,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से-९, करतारपुर इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. १०० रु.
मुस्कुराकर चल दिये (ग. सं.) : **डॉ. कृष्णावतार उमराव,** जवाहर पुस्तकालय, सदर बाज़ार, मथुरा-२८१००१. मू. १५० रु.

इस पानी में आग (दो. सं.) : **विनय मिश्र,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से-९, करतारपुर इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. २०० रु.

जैसा मैंने देखा (क्षणिकाएं) : **शिव डोयले,** कश्ती प्रकाशन, १७/२१२, जयगंज, अलीगढ़-२०२००१. मू. १०० रु.

मैं सागर सी... (हाइकु सं.) : **मंजूषा मन,** पोएट्री बुक बाज़ार प्रकाशन, इंदिरानगर, लखनऊ-२२६००६. मू. १४० रु.

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१६"

"कथाबिंब" *के प्रकाशन का यह ३८वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१६ के "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं* ***"कथाबिंब"*** *की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/ परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु.) **:**

● **कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन** - मालती जोशी

: श्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) **:**

●**वृंदा ने कहा था...** - कमल कपूर ● **धोबीपाट** - सुशांत सुप्रिय

: उत्तम कहानी (७५० रु.) **:**

●**बिरवे** - डॉ. सुभाष रंजन ●**मलबों के ढ़ेर से** - लक्ष्मी रानी लाल

●**ज़ीरो बटा सन्नाटा** - नीता श्रीवास्तव ●**कसाई खाना** - कल्पना रामानी

●**नदी, सीप और घोंघे** - जयराम सिंह गौर

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमाासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान	*:*	*यूनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९,रेतीवाला इंड. एस्टेट, भायखला, मुंबई - ४०० ०२७.*
२. प्रकाशन की आवर्तिता	*:*	*त्रैमासिक*
३. मुद्रक का नाम	*:*	*मंजुश्री*
४. राष्ट्रीयता	*:*	*भारतीय*
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	*:*	*उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.*
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	*:*	*स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री*

मैं, ***मंजुश्री*** *घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

(हस्ताक्षर - ***मंजुश्री****)*

T.A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.

Ph. : (off): + 91-22-25223613 / 67974515 / 6596 1234

Fax : + 91-22-25223631 • Email : tac@vsnl.com

• Website : www.chemicalsandinstruments.com

★ Offers ★

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
Ph.: 02646-272332
email: response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of:

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)
- Riedel (Switzerland)
- Merch (GDR)
- Lancaster (UK)
- Strem (UK)

संपर्क : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

''त्वदीय पाद पंकजम् नमामि देवि नर्मदे''

नर्मदा सेवा यात्रा

प्रारम्भ - 11 दिसम्बर, 2016 | समापन - 11 मई, 2017
अमरकंटक में नर्मदा के दक्षिण तट से... | अमरकंटक में नर्मदा के उत्तर तट पर।

समाज और सरकार का सामूहिक संकल्प

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश की जीवनदायिनी माँ नर्मदा की सेवा को उमड़ा जनसैलाब

- 16 जिलों के 1100 गाँवों में 3350 किलोमीटर की यात्रा।
- नर्मदा तटों पर एक किलोमीटर के दायरे में व्यापक वृक्षारोपण।
- अपने खेतों पर वृक्ष लगाने वाले किसानों को दी जायेगी 3 वर्ष तक 20 हजार रुपये प्रति हैक्टेयर की दर से सहायता।
- नर्मदा के दोनों तटों पर पांच किलोमीटर की सीमा तक नहीं होंगी शराब की दुकानें।
- नर्मदा तटों पर स्थित समस्त नगरों में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट हेतु 1500 करोड़ की राशि स्वीकृत।
- नर्मदा तटों के दोनों तरफ 1 किलोमीटर की सीमा में स्थित सभी ग्राम होंगे ओडीएफ।
- नर्मदा सेवा कार्यों को स्थायित्व देने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में नर्मदा सेवा समिति का गठन।

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

विश्व का सबसे बड़ा नदी संरक्षण अभियान

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें : 0755-4911102, 4911103, वेबसाइट : namamidevinarmade.mp.gov.in

Follow Chief Minister Madhya Pradesh /CMMadhyaPradesh /CMMadhyaPradesh /ChouhanShivrajSingh

कथाश्रिंग

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखळा, मुंबई - ४०० ०२७ में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१